* ओ३म् *

स्त्रियों का वेदाध्ययन
और
वैदिक कर्म काण्ड में अधिकार

—धर्मदेव विद्यावाचस्पति

* ओ३म *

स्त्रियों का वेदाध्ययन

और

वैदिक कर्म काण्ड में अधिकार

(वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों, श्रौत सूत्रों, गृह्यसूत्रों, स्मृतियों और रामायण, महाभारत, पुराणादि के इस विषयक प्रमाणों का विवेचन शङ्का समाधान सहित)

लेखक—

श्री पं० धर्मदेव जी

सिद्धान्तालङ्कार, विद्यावाचस्पति, संस्कृतधुरीण,

तर्कमनीषी, साहित्य भूषण,

स० मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,

तथा धर्मार्य सभा, देहली।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा प्रकाशित।

प्रथम संस्करण } पौष सम्वत् २००४ / जनवरी सन् १९४८ } मूल्य १।)

स्त्रियों का वेदाध्ययन
और
वैदिक कर्म काण्ड में अधिकार

अध्यायानुक्रमणिका

विषय सूची

भूमिका

ऋषि दयानन्द के पदार्पण से पहले, श्री शङ्करा चार्य के समय से स्त्रियों के विरुद्ध, इस देश के संस्कृत के विद्वानों ।ने जिहाद कर रक्खा था। यह तान शङ्कर के 'द्वारं किमेकं नरकस्य नारी' से प्रारम्भ होकर तुलसीदास के 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी' पर टूटती है। इसके बाद ऋषि दयानन्द का युग प्रारम्भ हो जाता है जहां "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इस वेद वाक्य की मर्यादा स्थापित होने लगती है। और इसके फल स्वरूप स्कूल, कालिज, पाठशाला और अनेक गुरुकुल, कन्याओं की शिक्षा के लिये खुले और खुलते जा रहे हैं, जिससे वेदपर्यन्त शिक्षा का द्वार स्त्रियों के लिये खुल गया और अब इधर उधर अच्छी सुपठित कन्यायें दिखाई देने लगीं। इन हालात के उपयुक्त प्रकार से बदल जाने के बाद, यह ख्याल भी नहीं किया जा सकता था, कि अब किसी ओर से स्त्रियों की शिक्षा के विरुद्ध कोई आवाज़ सुनाई देगी। परन्तु आश्चय के साथ हमने सुना कि हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस के एक कोने से, वही शङ्कर, और तुलसीदास वाली बेढंगी आवाज़, इस दयानन्द के युग में भी आ रही है। विश्व-विद्यालय के वेद विभाग में एक कन्या को प्रविष्ट करने से इस-लिये इन्कार किया गया कि यह पुरुष नहीं अपितु स्त्री है। यह असमय का राग किसको भा सकता था इसलिये प्रायः सभी शिक्षित विद्वानों और विशेष कर आर्य विद्वानों ने, इस बेढंगे

राग को सुनने से इन्कार कर दिया। आर्य समाजों की शिरोमणि सार्वदेशिक सभा के नियुक्त किये हुये श्री प्रिंसिपल महेन्द्र प्रताप शास्त्री एम. ए. स्वर्गीय मालवीय जी से मिले और आर्य समाज का दृष्टि कोण उनके सम्मुख उपस्थित करते हुए, कन्या के वेद श्रेणी में प्रविष्ट न करने के विरुद्ध बल पूर्वक प्रोटेस्ट किया। मालवीय जी ने इस शिकायत के दूर करने का वादा किया और एक उपसभा इस विषय पर विचार करने के लिये नियत की। उपसभा ने विचार के बाद निम्न निश्चय किया:—

BENARES HINDU UNIVERSITY

The Committee appointed by the Sanate to consider the question of admission to the College of Theology, with Pandit Madan Mohan Malaviyaji as Chairman, the Vice Chancellor, the Principals of the Colleges of oriental Learning and Theology, and several other members, has now submitted its report which is as follows ;-

1. The Existing Colleges of Oriental Learning and Theology shall be amalgamated into Sanskrit Mahavidyalaya under the Faculty of Oriental Learning. This college will teach the different branches of Sanskrit learning, including the Vedas, up to the Acharya Stage, and shall be open to all, irrespective of caste, creed or sex,

2. The Faculty of theology will arrange for the religious instructions of the Hindu students and training in Paurohitya and Karma Kanda (Hindu rituals and Ceremonials.) Instruction in Paurohitya and Karma Kanda shall be in conformity with the tenets and priniciples of traditional Hinduism, as based on Shruti, Smriti, Purana, Itihasa and Sadachara.

3. Permision for admission to the Madhyama Veda class of Sanskrit Mahavidyalaya may be granted to Miss Kalyani Devi.

इस निश्चय के बाद कन्या वेद श्रेणी में प्रविष्ट करली गई परन्तु निश्चय के सं २ से यह ध्वनि, निकलती है कि पौरोहित्य और कर्म-काण्ड में उप सभा ने अब भी कन्याओं के लिये द्वार बंद सा ही रक्खा है।

यह ग्रन्थ सार्वदेशिक सभा को आज्ञा से श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने तय्यार किया है। विद्वान् लेखक ने वेद-शास्त्रादि अनेक ग्रन्थों का मथन करके अनेक प्रमाण उपस्थित किये हैं जिनसे असंदिग्धरीति से सिद्ध होता है कि कन्याओं को न केवल वेदाध्ययन का अधिकार है अपितु कर्म काण्ड के कराने का भी उन्हें पुरुषों की भांति, अधिकार है ! आशा है इस ग्रन्थ के पढ़ने के बाद कन्याओं के वेदाध्ययनादि के सम्बन्ध में किसी को कुछ भी सन्देह न रहेगा।

नारायण स्वामी
प्रधान सार्वदेशिक सभा

४-१२-४६

लेखक के प्रारम्भिक शब्द

जैसे कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मान्य प्रधान श्री महात्मा नारायण स्वामी जी ने अपनी भूमिका में बताया है हिन्दू विश्वविद्यालय में अरबी फारसी विभाग के अध्यक्ष श्री प्रो० महेश प्रसाद जी मौलवी आलिम फ़ाज़िल की सुपुत्री चि० कल्याणी देवी को हिन्दू विश्व विद्यालयान्तर्गत धर्म-विज्ञान महाविद्यालय की वेद मध्यमा कक्षा में प्रवेश की अनुमति न मिलने पर 'सार्वदेशिक' तथा अन्य आर्य पत्रों में इस अनुचित प्रतिबन्ध के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। "सार्वदेशिक" के नवम्बर सन् १९४५ के अङ्क में हिन्दू विश्वविद्यालय में ऐसा अनर्थ? इस शीर्षक से मैंने सम्पादकीय टिप्पणी देते हुए स्त्री शूद्रों के वेदाधिकार पर प्रकाश डाला था। दिसम्बर सन् १९४५ के अङ्क में उस टिप्पणी का शेष अंश प्रकाशित किया गया। २८-१२-४५ के अङ्क में श्री प्रो० महेशप्रसादजी के यह लिखने पर कि "एक प्रश्न यह है कि स्त्रियों को कर्म-काण्ड व पद्धति के साथ वेद पढ़ने का अधिकार है या नहीं। वेद को साहित्य के रूप में स्त्रियां तथा सभी को पढ़ने का अधिकार है इस बात को विश्व-विद्यालय वाले मान गये किन्तु कर्म-काण्ड सीखने वा पढ़ने की अधिकारिणी स्त्रियां भी हैं इस पर प्रकाश पड़ना चाहिये।"

मैंने "सार्वदेशिक" के जनवरी और फ़र्वरी सन १९४६ के अङ्कों में 'स्त्रियों का वैदिक कर्म-काण्ड में अधिकार' इस शीर्षक

से दो विस्तृत लेख प्रकाशित किये। मुलतान के सनातन धर्म संस्कृत कालेज के उपाध्यक्ष पं० दीनानाथ जी शास्त्री ने बनारस से निकलने वाले 'सिद्धान्त' नामक साप्ताहिक पत्र के ७ और १४ वैशाख के अङ्कों में उनका उत्तर देने का यत्न किया था जिनका सप्रमाण प्रत्युत्तर "सार्वदेशिक" के जून, जुलाई और अगस्त १६४६ के अङ्कों में मैंने प्रकाशित किया। इन सब लेखों की प्रतियां स्व० पण्डित मदन मोहन जी मालवीय तथा उप समिति के अन्य सदस्यों के पास भी भेजी जाती रहीं। यह प्रसन्नता की बात है कि अन्त में २२ अगस्त सन् १६४६ को पं० मालवीयजी की अध्यक्षता में चि० कल्याणी देवी को मध्यमा कक्षा में प्रविष्ट करना स्वीकार कर लिया और ७ सित० सन् १६४६ को उसे प्रविष्ट कर लिया गया। इस प्रकार स्त्रियों के वेदाधिकार को स्वीकार करने की उदारता पण्डित मण्डली ने दिखाई यह हर्ष का विषय है। श्री प्रो० महेशप्रसाद जी, श्री सम्पादक जी आर्य मित्र तथा अन्य विद्वान् मित्रों ने 'सार्वदेशिक' में प्रकाशित स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्म-काण्ड में अधिकार विषयक लेखमाला को विशेष रूप से पसन्द करते हुए यह इच्छा प्रकट की कि इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिया जाए ताकि यह आर्य समाज के स्थायी साहित्य की एक वस्तु बन सके। अपने विद्वान् मित्रों के इस निर्देश को स्वीकार करते हुए मैंने 'सार्वदेशिक' में प्रकाशित अपने इस विषयक लेखों को ऐसे विशिष्ट रूप से क्रम बद्ध कर

दिया है जिससे पुस्तक रूप में उनकी उपयोगिता बढ़ जाए। 'सार्वदेशिक' के जून सन् १९४६ के अङ्क में प्रकाशित मेरा इस विषयक लेख सिद्धान्त के १९ और २६ नवम्बर सन् १९४६ के अङ्क में प्रकाशित हुआ है और शेष लेखों को प्रकाशित करने का भी सम्पादक महोदय ने वचन दिया हुआ है। तथापि श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री जैसे कुछ अनुदार विचारों के पण्डित इस विषयक अपना आन्दोलन असङ्गत लेखों द्वारा जिनमें वेदादि में सत्य शास्त्रों में गोमांस भक्षण ही नहीं वध तक को वे प्रतिपादित करते हैं (जैसे कि शास्त्री जी ने "सिद्धान्त" के २४ दिसम्बर सन् १९४६ के अङ्क में किया है) जारी किये हुए हैं अतः इस पुस्तक के प्रकाशन को आवश्यक समझा गया है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि इस पुस्तक के निर्माण में मुझे वेदों, ब्राह्मणों, श्रौत सूत्रों गृह्यसूत्रों, स्मृतियों, पुराणों तथा अन्य अनेक ग्रन्थों के अनुशीलन का विशेष परिश्रम करना पड़ा है। यदि निष्पक्षपात होकर विद्वान् महानुभाव इसको पढ़ेंगे तो मेरा विश्वास है कि उनके इस विषयक सन्देह की निवृत्ति में बड़ी सहायता मिलेगी। इन शब्दों के साथ मैं इस पुस्तक को विद्वान् पाठकों के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करता हूँ।

निवेदक
धर्म देव विद्यावाचस्पति
३-१-१९४७

॥ ओ३म् ॥

स्त्रियों का वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड में अधिकार

अध्याय 1

वैदिक प्रमाण

स्त्रियों को वेदाध्ययन करने का अधिकार है या नहीं इस विषयक चर्चा विद्वानों में मध्यकाल के पश्चात प्रारम्भ हुई है। "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम् इति श्रुतेः" अर्थात् स्त्री और शूद्रों को अध्ययन (विशेषतः वेद का) न करना चाहिये ऐसा श्रुति कहती है। इस प्रकार के कल्पित वचन श्रुति या वेद के नाम से स्वार्थ परायण लोगों ने घड़ लिये तथा इस आशय के कुछ वचन स्मृतियों आदि में मिला दिये (जिनकी संक्षिप्त विवेचना हम स्मृतियों के प्रकरण में करेंगे) किन्तु आज तक एक भी विद्वान् को यह साहस नहीं हुआ कि मूल वेदों (मन्त्रसंहिताओं में से एक भी प्रमाण इस भाव का उद्धृत कर सके कि स्त्रियों के लिये वेदों के अध्ययन वा वैदिक कर्मकाण्ड-यज्ञ याग, संस्कार आदि में भाग लेने का वेदों में कहीं निषेध पाया जाता है। वेदों का जिन्होंने निष्पक्षपात होकर थोड़ा सा भी अध्ययन किया है वे इस बात को स्वीकार किये बिना नहीं रह सकते कि न केवल यह कि वेदों में स्त्रियों के वेदाध्ययन निषेध का प्रतिपादक कोई

मन्त्र नहीं है, बल्कि स्त्रियों के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करने वाले हजारों मन्त्र हैं जिनमें से सैंकड़ों ऐसे हैं जिनका उच्चारण स्वयं स्त्रियों को यज्ञ, संस्कारादि के अवसर पर करना होता है जैसे कि स्वयं उन वेद मन्त्रों से तथा ब्राह्मण ग्रन्थों, श्रौत सूत्रों और गृह्य सूत्रों व ऋग्विधानादि अन्य ग्रन्थों से स्पष्टतया सूचित होता है। ऋग्वेद के अन्तिमसूक्त (१०। १९१) में भगवान् का सब नर नारियों को सम्बोधित करते हुए स्पष्ट कथन है कि:—

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्त-मेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥

(ऋ० १०। १९१। ३)

अर्थात् "हे समस्त नर नारियो! तुम्हारे लिये ये मन्त्र समान रूप से दिये गये हैं तथा तुम्हारा परस्पर विचार भी समान रूप से हो। तुम्हारी सभायें सबके लिये समान रूप से खुली हुई हों—जन्मगत भेद भाव उनके अन्दर न हो। तुम्हारा मन और चित्त समान तथा मिला हुआ हो। मैं तुम्हें समान रूप से मन्त्रों को उपदेश करता और समान रूप से ग्रहण करने योग्य पदार्थों को देता हूँ।"

इस मन्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि वेदों के मन्त्र भगवान् ने सब नरनारियों के हित के लिये समान रूप से दिये हैं अतः उनके अध्ययन करने तथा यज्ञादि करने का अधिकार उन सब व्यक्तियों को है जो अपने जीवनों को पवित्र और उन्नत करना चाहते हैं।

ऋग्वेद में अनेक सरस्वती सूक्त आते हैं जिनमें विदुषी देवियों के कर्त्तव्यों का विशेषरूप से प्रतिपादन है। उनमें स्त्रियों के वेदों को अध्ययन अध्यापन तथा यज्ञों के करने कराने का स्पष्ट विधान है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के तृतीय सूक्त में निम्न मन्त्र पाया जाता है जो इस प्रकरण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने के कारण विशेष उल्लेखनीय है :—

चोदयन्ती सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती॥

ऋ० १।३।११

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि सरस्वती अर्थात् विदुषी स्त्री मधुर और सत्य वचनों का प्रयोग करती और वैसा ही करने की अन्यों को प्रेरणा करती हुई, उत्तम बुद्धिवाद व परामर्श देती हुई सब प्रकार के यज्ञों को—ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञादि को धारण करती है। सरस्वती शब्द सृ-गतौ इस धातु से बनता है तथा गति के ज्ञान, गमन और प्राप्ति ये ३ अर्थ होते हैं इसलिये सरस्वती का अर्थ ज्ञानवती स्पष्ट है। "योषा वै सरस्वती वृषा पूषा॥ शत पथ २।५।१।११ इत्यादि में भी सरस्वती शब्द का प्रयोग विदुषी पत्नी के लिये स्पष्ट पाया जाता है। इनके अतिरिक्त 'वाक् सरस्वती'॥ शत० ७।५।१।३१॥ ११।२।४।६॥ १२।६।१।१३ ऐतरेय ३।२ में वाग्घि सरस्वती तथा निघण्टु २।११ के अनुसार सरस्वती वाणी के लिए भी आया है। अतः उत्तम वाणी का प्रयोग करने वाली विदुषी स्त्री को भी सरस्वती के नाम से पुकार सकते हैं। ऐसी सरस्वती के

कर्त्तव्यों का प्रतिपादन करते हुए वेदों में कहा गया है कि वह सब यज्ञों का धारण और पोषण करती है (डुधाञ् धारण पोषणयोः) धारण पोषण करने से तात्पर्य उनका स्वयं करना, कराना और उनका प्रचार करना है। ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ-यज्ञ, बलिवैश्वदेव यज्ञ और अतिथि यज्ञ ये पांच दैनिक यज्ञ हैं। विदुषी देवी इन यज्ञों को करती और कराती है। ब्रह्म यज्ञ अर्थ मनुस्मृति ३।७० में 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः' ऐसा किया गया है। इसकी व्याख्या में मेधातिथि कुल्लूक भट्टादि ने लिखा है कि 'अध्यापन शब्देनाध्ययनमपि गृह्यते (मे०) अतोऽध्यापन-मध्ययनं च ब्रह्मयज्ञः (कु०)' अर्थात् वेदों का अध्ययन और अध्यापन तथा सन्ध्योपासन ब्रह्म यज्ञ कहलाता है। देवयज्ञ से तात्पर्य अग्नि होत्र व हवन का है। यह भी स्त्रियों को करना तथा कराना चाहिये। गृहस्थ पत्नी के बिना जो यज्ञ करता है वह शास्त्र मर्यादा के अनुसार यज्ञ ही नहीं कहलाता। "अयज्ञो वा एष योऽपत्नीकः" (तैत्तिरीय संहिता २।२।२।६) इत्यादि वचनों का यही तात्पर्य है। "अथो अर्धोवा एष आत्मनः यत् पत्नी" तै० ३।३।३।५।

अर्थात् पत्नी पति की अर्धाङ्गिनी है अतः उसके बिना यज्ञ अपूर्ण है।

इस मन्त्र द्वारा स्त्रियों को वेदाध्ययन और यज्ञादि करने और कराने का अधिकार स्पष्टतया सूचित होता है।

ऋ० १०।१७।७ में सरस्वती अथवा विदुषी देवी के विषय में यह कथन है कि:—

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्॥

अर्थात् दिव्य गुणों की कामना करने वाले विदुषी देवी को निमन्त्रित करते हैं। यज्ञों के अवसरों पर उसके अनुष्ठान के लिए ऐसी स्त्री को निमन्त्रित किया जाता है। उत्तम कर्म करने वाले विदुषी देवी को बुलाते हैं और वह दानशील व्यक्तियों को उत्तम ज्ञान देती है।

इस मन्त्र के द्वारा स्त्रियों के न केवल यज्ञ करने बल्कि करवाने का अधिकार स्पष्टतया सूचित होता है।

'सरस्वती' का विदुषी स्त्रीवाचकत्व

इन उपर्युक्त मन्त्रों से यद्यपि स्त्रियों को वेदाध्ययन अध्यापन करने का अधिकार स्पष्टतया प्रमाणित होता है तथापि कई कट्टर पौराणिक सम्प्रदायी विद्वान् ऐसे मन्त्रों में आये सरस्वती शब्द का देवता परक अर्थ करके टालमटोल का प्रयत्न करते हैं कि इन मन्त्रों का मानुषी स्त्रियों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। यही विचार मुलतान सनातन धर्म कालेज के पं० दीनानाथ जी शास्त्री ने 'सिद्धान्त' नामक बनारस से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र के १४ मई सन् १९४६ के अङ्क में प्रकट किया था। अतः इस विषय में कुछ स्पष्ट प्रमाण उद्धृत कर

देना आवश्यक प्रतीत होता है कि सरस्वती शब्द वेदों में विदुषी स्त्री के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। वेदों के सब शब्द यौगिक हैं। 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानीति नैरुक्त समयः। नाम च धातुजमाह निरुक्ते' इत्यादि के अनुसार यही निरुक्त सम्भत सिद्धान्त है। इस दृष्टि से सरस्वती का यौगिक अर्थ ज्ञानवती वा विदुषी है यह ऊपर दिखाया जा चुका है।

ऋ० ६।४।८ के 'पावीरवीकन्या चित्रायुः वीरपत्नी धियं धात्॥

इस मन्त्र में सरस्वती के साथ वीरपत्नी शब्द का प्रयोग हुआ है और उसके विषय में कहा है कि वह उत्तम बुद्धि और कर्म को (धीः के निघण्टु में बुद्धि और कर्म ये दोनों अर्थ दिये हैं) धारण करती है। यह सरस्वती के स्त्रीवाचकत्व को स्पष्ट सिद्ध करता है।

ऐसे ही यजु० ८।४३ में विदुषी स्त्री के गुण सूचक अनेक नामों में सरस्वती शब्द का भी पाठ है यथा "इडे रन्ते हव्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति। एता ते अघ्न्ये नामानि" इस मन्त्र का देवता पत्नी है अतः सरस्वती का भी स्त्रीवाचकत्व स्पष्टतया प्रमाणित होता है।

अथर्ववेद ७।७१।६८।२ में विदुषी पत्नी को सम्बोधित करते हुए पति के मुख से "शिवा नः शन्तमा भव सुमृडीका सरस्वती। मा ते युयोम सन्दृशः।" यह मन्त्र आया है जिसका स्पष्ट अर्थ है कि हे सरस्वति विदुषि-पत्नि! तू (नः) हमारे लिये (शन्तमा)

अत्यधिक शान्ति देने वाली और (सुमृडीका भव) उत्तम सुख देनेवाली बन। (ते सन्दृशः मा युयोम) हम तेरी उत्तम दृष्टि से वियुक्त न हों। स्वयं श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री ने इस मन्त्र को अपने लेख में उद्धृत किया है किन्तु वे यह समझते हैं कि इसमें पुराणोक्त सरस्वती देवी का वर्णन है जो उनका भ्रम है। इस विषय में यदि किसी को सन्देह हो तो उसे मानवगृह्य सूत्र (१-११-१८), वाराहगृह्य सूत्र, लौगाक्षि गृह्य सूत्र, २५।३७ काठक गृह्य सूत्र (२५।४२) आदि को देखना चाहिये। जहां विवाह संस्कार में सप्तपदी के अवसर पर वर वधू को सम्बोधन करते हुए इस मन्त्र का पाठ करे ऐसा विधान पाया जाता है। लौगाक्षि गृह्य सूत्र के भाष्य में देवपाल ने इस मन्त्र का अर्थ करते हुए स्पष्ट लिखा है कि:—

"एभिश्च सप्तभिः पद्भिः भर्त्तुः सुखाय भव। (सुमृडीका) मृड-सुखने सुसुखा। हे सरस्वति मा (ते) तव (व्योम) आकाशः कश्चित् सप्त पदं द्राक्षीत पवनान्दोलितवाससो नग्नं वा कञ्चित् प्रदेशम्॥

(लौगाक्षि गृह्य सूत्राणि पं० मधुसूदन कौल शास्त्रि सम्पादितानि काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलि स० ४९ पृ० २७३)

यहां भाष्यकार देवपाल ने भी सरस्वती का स्त्रीवाचकत्व स्पष्टतया स्वीकार करते हुए यह अर्थ किया है कि तू सदा सुखदायिनी तथा अत्यन्त शान्ति प्रदा हो इत्यादि। इतना ही

नहीं विवाह संस्कार में आये हुए (सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति) इस मन्त्र की व्याख्या में देवपाल ने स्पष्ट लिखा है कि "इह सर्ववाक् सरस्वती तद्रूपेण च वधूरुपचर्यते। हे सरस्वति सा त्वम् इदं कर्म प्राव गोपाय" लौगाक्षि गृह्य सूत्राणि २५।१६ ऐसे ही "य इह पूर्वे जनाः" इस गाथा के भाष्य में उसने लिखा है कि "सरस्वती वागात्मिका इयमधिगीयमाना कन्या" अर्थात् सरस्वती शब्द से यहां उत्तम वाणी वाली कन्या का ग्रहण है।

(लौगाक्षि गृह्य सूत्राणि पृ० २४८।२४६ "या सा उपरि पर्वते आत्मना रममाणेव। द्यौमम्रृद्धी ह वा असि त्वोत ओजसि शृणोमि" इस गाथा के भाष्य में भी देवपाल ने फिर लिखा है "एवं च सति वधूं वदति वरः तेन त्वया ऊतः रक्षितः सन् अहम् ओजसि सति शृणोमि सकलं कर्तव्यं श्रुतिस्मृतिविहितं कर्तव्यतया व्यवस्यामि सहधर्मचारिण्याः तवलाभ बलेनेत्यर्थः" (देखो लौगाक्षि गृह्य सूत्र देवपाल भाष्य कश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलिः पृ० २६०)।

अर्थात् वर वधू को सम्बोधन करते हुए कहता है कि तू सरस्वती है। तुझ से रक्षित होकर मैं अपने श्रुतिस्मृतिप्रतिपादित कर्तव्य का श्रवण करता और तुझ सहधर्मिणी के साथ पालने का दृढ़ निश्चय करता हूँ। इससे बढ़कर सरस्वती के विदुषी स्त्रीवाचकत्व का प्रमाण और क्या हो सकता है? इस

पर भी जो इस बात को न स्वीकार करें यह उनके दुराग्रह या पक्षपात को छोड़कर और कुछ नहीं।

निघण्टु ५।५ में सरस्वती पदनामों में भी दिया गया है जिसका अर्थ यौगिक होता है और पद् धातु के गत्यर्थक होने के कारण जिसमें ज्ञान, गमन और प्राप्ति इन तीनों का समावेश है सरस्वती का अर्थ ज्ञानवती, उत्तम मार्ग पर गमन करने वाली और उत्तम पति वा परमेश्वर को प्राप्त करने वाली स्त्री यह निकलता है। इस प्रकार निष्पक्ष विवेचन से स्त्रियों को वेदाध्ययन और अध्यापन तथा यज्ञों के करने कराने का अधिकार वैदिक प्रमाणों द्वारा परिपुष्ट होता है।

स्त्री का ब्रह्मा बनाना

इस बात को सब जानते हैं कि यज्ञ में ब्रह्मा का पद सब से ऊंचा होता है। ऐतरेय ५।३३ में कहा है कि "अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति त्रय्या विद्ययेति" अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों विद्याओं के प्रतिपादक वेदों के पूर्ण ज्ञान से ही मनुष्य ब्रह्मा बन सकता है। शतपथ ब्राह्मण ११।५।८।७ में भी इसी बात को कहा है कि "अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इत्यनया त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात्" अर्थ पूर्ववत् है कि ज्ञान, कर्म, उपासना रूप त्रिविध विद्या के प्रतिपादक (चारों) वेदों के पूर्ण ज्ञान से ही मनुष्य ब्रह्मा पद के योग्य बनता है। गोपथ उत्तरार्ध १।३ में लिखा है कि

"तस्माद् यो ब्रह्मनिष्ठः स्यात् तं ब्रह्माणं कुर्वीत.।" अर्थात् जो सब से अधिक परमेश्वर और वेदों का ज्ञाता हो उसे ब्रह्मा बनाना चाहिये। शतपथ १।७।४।१६, १४।२।२।१६ का **"ब्रह्म वा ऋत्विजां भिषक्तमः।"** यह वाक्य भी इस सिद्धान्त को समर्थित करता है कि ब्रह्मा का स्थान सब पुरोहितों से ऊंचा है और ऋत्विजों की त्रटियों को दूर करने वाला वह होता है इसीलिये निरुक्त में ब्रह्मा को 'सर्वविद्यः' सारी विद्याओं को जानने वाला बताया गया है। ऐसी अवस्था में यदि वेद मन्त्रों से यह सिद्ध कर दिया जाय कि स्त्री ब्रह्मा बन सकती है तो इससे बढ़कर स्त्रियों को वेदाध्ययन और अध्यापन तथा पौरोहित्य कर्म में अधिकार का प्रबलतर प्रमाण और कोई नहीं हो सकता। इस विषय में ऋग्वेद ८।३३। में कहा है कि **"अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर। मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"** इस मन्त्र में स्त्री विषयक यह उपदेश देते हुए कि तुम नीचे देखकर चलो, व्यर्थ में इधर उधर की चीजों वा व्यक्तियों को मत देखती रहो, अपने पैरों को सावधानी और सभ्यता से रक्खो। ऐसे रूप में वस्त्रों को धारण करो कि जिससे तुम्हारे गुप्त अङ्ग दिखाई न पड़ें। अन्तिम चरण में कहा है कि इस प्रकार उचित लज्जा और सभ्यता के नियमों का पालन करती हुई तुम स्त्री (हि) निश्चय से (ब्रह्मा बभूविथ)

ब्रह्मा की पदवी पाने के योग्या बन सकती हो। यह इस मन्त्र का सीधा और अत्यन्त स्पष्ट अर्थ विना किसी प्रकार की खैंचातानी के निकलता है पर क्योंकि श्री सायणाचार्य पौराणिक कुसंस्कार-वश [जैसे कि उन्होंने "स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा !" (भागवत १।४।२५) इस भागवत पुराण के श्लोक को उद्धृत करते हुए जिसका अर्थ है कि स्त्रियों और शूद्रों को बेद पढ़ने का अधिकार नहीं) ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात तथा तैत्तिरीय संहिता भाष्य भूमिकादि में लिखा है कि "स्त्री शूद्र-योस्तु सत्यामपि ज्ञानापेक्षायाम् उपनयनाभावेन अध्ययन-राहित्याद् वेदेऽधिकारः प्रतिबद्धः। धर्म ब्रह्मज्ञानम् तु पुरा-णादि मुखेन उत्पद्यते।"

(वेद भाष्य भूमिका संग्रह-चौखम्भा संस्कृत कार्यालय बनारस में प्रकाशित पृ० ४६)

अर्थात् स्त्रियों और शूद्रों को ज्ञान की इच्छा होने पर भी उनके लिये उपनयन का और इसलिये अध्ययन का अभाव होने के कारण वेद में उनका अधिकार निषिद्ध है। परमेश्वर और बेद विषयक ज्ञान उन्हें पुराणादि के द्वारा हो जायगा इत्यादि—इन विचारों की हम आगे आलोचना करेंगे] स्त्रियों का वेदाध्ययनाधिकार नहीं मानते थे इसलिये इस मन्त्र की उन्होंने ऐसी असङ्गत व्याख्या की है जिसको पढ़कर किसी भी

निष्पक्षपात विद्वान् को हँसी आये बिना नहीं रह सकती। सायणाचार्य लिखते हैं कि "मेधातिथेर्धनप्रदाता ह्रायोगिरासङ्गः स पुमान् भूत्वा स्त्र्यभवत् ।" अर्थात् मेधातिथि ऋषि को दान देने वाला ह्रायोगि आसङ्ग पुरुष होकर स्त्री हो गया था उसको सम्बोधित करतेहुए इन्द्र ने कहा है कि -"हि यस्मात्कारणाद् (ब्रह्मा॒) ज्ञानी पुरुषः सन् त्वं स्त्री बभूविथ ।" अर्थात् क्योंकि तू ज्ञानी पुरुष स्त्री बन गया है।

एक तरफ तो सायणाचार्य ऋग्वेद भाष्य के उपोद्घात में "वाचा विरूपनित्यया" (ऋ० ८।७५।६) "अनादिनिधना नित्या, वागुत्सृष्टा स्वयंम्भुवा । आदौ वेदमयी दिव्या अतः सर्वा प्रवृत्तयः।" "अत एव च नित्यत्वम्" (वेदान्त दर्शन १।३।२९) इत्यादि को उद्धृत करते हुए वेदों की पौरुषेयता का खण्डन करके लिखते हैं कि "तस्माद् नास्ति वेदस्य पौरुषेयत्वम् ।" अर्थात् इसलिये वेद पौरुषेय नहीं। उनकी अनित्यता के पूर्व पक्ष मीमांसा—१।७।२८ अनित्य दर्शनाच्च "अनित्या जननमरणवन्तो बबरादयो वेदे श्रूयन्ते" अर्थात् अनित्य बबरादि पुरुषों का वर्णन वेदों में दिखाई देता है इसलिये वे अनित्य हैं इस पूर्व पक्ष को उठाकर "परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम् (मी० १।७।३१) "यत् परं बबरादिकं तत् शब्दसामान्य-

मात्रमेव । न तु मनुष्यो बबरनामकोऽत्र विवक्षितः बबर-ध्वनियुक्तस्य प्रवहणस्वभावस्य वायोरत्र वक्तुं शक्यत्वात् ।"

(सायणाचार्य कृत ऋग्वेद भाष्योपोद्घात वेद भाष्य भूमिका संग्रह पृ० ३३)

अर्थात् वेदों में बबर आदि किसी मनुष्य विशेष का नाम नहीं है। वेदों में प्रयुक्त शब्द सामान्य गुण वाचक हैं व्यक्ति विशेष के नाम नहीं। बबर प्रावाहणि से तात्पर्य बहने वाले और बबर शब्द करने वाले वायु का है किसी मनुष्य विशेष का नहीं।

इस प्रकार उसकी नित्यता और अपौरुषेयता का प्रतिपादन करते हैं और दूसरी ओर सायोगि जैसी ऊटपटांग कथाएं अनित्य व्यक्तियों के सम्बन्ध में देते हैं यह उनका भयङ्कर परस्पर विरोध नहीं तो क्या है ? इस परस्पर विरोध और पौराणिक पक्षपात के कारण हम उनके "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ" इत्यादि अर्थों को सर्वथा अप्रामाणिक समझते हैं। "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ" इत्यादि से विदुषी स्त्रियों के यज्ञों में ब्रह्मा तक की सर्वोच्च पदवी ग्रहण करने का अधिकार स्पष्टतया सूचित होता है।

सूर्यासूक्त के कुछ मन्त्रः—

ऋ० १०।८५ के सभी मन्त्र जिनकी ऋषिका "सूर्या सावित्री"

है इस विषय में बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। ऋषि का अर्थ "ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेति-ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः" निरुक्त आदि आर्ष बचनों के अनुसार मन्त्रों का द्रष्टा अथवा उनके रहस्य को समझ कर प्रचार करने वाला होता है यद्यपि कई पौराणिक और पाश्चात्य विद्वान् ऋषियों को मन्त्रों का कर्ता मानते हैं जो ठीक नहीं है। यह बात वस्तुतः उल्लेखनीय है कि जिस सूक्त (१०-८५) के अन्तर्गत मन्त्रों को आर्य लोग वैदिक काल से अबतक विवाह-संस्कार के अवसर पर प्रयोग में लाते रहे हैं और जिनमें वर वधू की गम्भीर प्रतिज्ञाएं तथा गृहस्थ कर्त्तव्यों का अत्युत्तम उपदेश पाया जाता है उस ४६ मन्त्रों वाले अत्यधिक महत्त्व-पूर्ण सूक्त की ऋषिका सूर्या सावित्री नामक विदुषी देवी है। ऐसी ही गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत्, निषत्, जुहू, अदिति, उर्वशी, यमी, शची आदि सैकड़ों ऋषिकाएं हुई हैं जिनके विषय में आगे लिखा जायगा। यह बात स्वयं उन संकुचित विचार वाले लोगों की उक्ति का मुंह तोड़ उत्तर है जो वेदों में स्त्रियों का अधिकार नहीं मानते। इस सूक्त का अन्तिम मन्त्र है जिसमें वर वधू दोनों विवाह संस्कार के अवसर पर गम्भीर घोषणा करते हैं कि "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ।" (ऋ० १०।८५।४७) यहां 'नौ' अर्थात हम दोनों इस द्विवचन,

पद का प्रयोग द्रष्टव्य है। मन्त्र का तात्पर्य यह है कि "सब विद्वान् लोग इस बात को जानलें कि हम दोनों के हृदय जल की तरह परस्पर प्रेमयुक्त मिले रहेंगे। जगत् का धारण करने वाला और प्राणस्वरूप परमात्मा तथा धर्म का उपदेश देने वाली धर्मोपदेशिका विदुषी हम दोनों के प्रेम को स्थिर बनायें।"

गोभिल गृह्यसूत्र २-६-१५ में इस मन्त्र को वर वधू दोनों द्वारा उच्चारण करने का विधान है जैसे कि भाष्यकार श्री पं० सत्यव्रत सामाश्रमी ने अपरेणाग्नि मौदकोऽनुसंव्रज्य पाणिग्राहं मूर्द्ध देशे ऽवसिञ्चति तथेतरां समञ्जन्तु इत्येतया ऋचा।" इस सूत्र की व्याख्या में लिखा है ततश्चोदक कुम्भयुक्तः कश्चन पुरुषः अग्नेः पश्चिमतः दम्पती स्थानं समागत्य वरं वधूं च "समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ।" (मन्त्र ब्राह्मण १, २, ६) इत्येतया ऋचा दम्पतिभ्याम् उच्यमानया मूर्द्ध देशां तयोरुभयोरेव आसिञ्चेत् उदकेन।"

ठाकुर उदयनारायण सिंह ने गोभिलगृह्य सूत्र की हिन्दी टीका में इसका अर्थ इन शब्दों में दिया है:—

अनन्तर कोई जलवाहक व्यक्ति अग्नि के पश्चिम भाग में आकर विवाह के लिये उद्यत वर और कन्या के माथे पर जल

डालकर स्नान करावे और उसी समय दम्पती (पति पत्नी) एक वाक्य से 'समञ्जन्तु" यह मन्त्र पढ़ें। १६

(गोभिलगृह्यसूत्रम्—सत्यव्रतसामाश्रमिभाष्योपेतम् शास्त्र प्रकाश भवन मधुरापुर पृ० ७२-७३)

पारस्कर गृह्य सूत्र के भाष्य में गदाधराचार्य ने "समञ्जन्तु विश्वे देवाः" इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि "उभयोः कन्या वरयोर्मन्त्रपाठः" "इति भर्तृ यज्ञः।" अर्थात् भर्तृ यज्ञ आचार्य के अनुसार समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ" यह वर वधू दोनों के उच्चारण करने का मन्त्र है। मन्त्र गत "नौ" यह उत्तम पुरुष द्विवचनान्त प्रयोग स्पष्टतया इस मत का समर्थक है। सूर्या सूक्त का दूसरा मन्त्रांश तो इस प्रसङ्ग में विशेष उल्लेखनीय है। वह निम्न लिखित है :—

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदासि ॥ ऋ १० । ८५ । २६

यह मन्त्र विवाह के अवसर पर वधू को सम्बोधन करते हुए बोला जाता है जिसका सीधा और स्पष्ट अर्थ है कि तुम पति के घर में जाओ जिस से घर की स्वामिनी बनो। सब को अपने वश में करती हुई तुम ज्ञान और यज्ञ विषयक उपदेश करो।

यहां 'विदथ' शब्द का प्रयोग 'आवदासि' के साथ हुआ है। 'विदथ' शब्द का निगण्टु ३-१७ में यज्ञ के नामों में और ४-३ में पद नामों में पाठ है। पद नाम का अर्थ यौगिक और गति अर्थात ज्ञान, गमन, प्राप्ति होता है यह पहले दिखलाया जा चुका है यह विद् ज्ञाने इस धातु से बनता है अतः इस का ज्ञान, अर्थ स्पष्ट ही है। तात्पर्य यह है कि स्त्री को इतनी सुशिक्षिता होना चाहिये कि वह न केवल स्वयं यज्ञादि का ठीक अनुष्ठान कर सके बल्कि अन्य स्त्रियों को भी उस विषयक उपदेश दे सके तथा वेदों को पढ़ा कर उस ज्ञान का प्रसार कर सके। इस वेद मन्त्र से भी स्त्रियों का वेद और यज्ञादि कर्मकाण्ड का अधिकार स्पष्टतया प्रमाणित होता है। सूर्यासूक्त का तृतीय मन्त्र जिसका उल्लेख हम इस प्रसङ्ग में करना आवश्यक समझते हैं निम्न लिखित है :—

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम् अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं संसृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः॥ऋ०१०।८५।२७ पूर्वोद्धृत मन्त्र से अगला यह मन्त्र है जो मुख्य तया वधू को और अन्तिम चरण वर वधू दोनों को सम्बोधन करके कहा गया है। पूर्व तीन चरणों में यह बताते हुए कि गृहस्थ धर्म का पालन करने के लिये तुम अपने पति के घर में जागरूक-आलस्य रहिता होकर निवास करो। तुम्हें सन्ता-

नादि सौभाग्य की प्राप्ति हो। अन्तिम चरण में कहा गया है कि हे वर वधू! तुम दोनों वृद्ध (ज्ञान तथा अनुभव दृष्टि से) होकर विदथ अर्थात् ज्ञान और यज्ञ का अन्यों के प्रति उपदेश करो। उनके प्रसार में अध्यापनादि द्वारा सहायता दो।

श्री हरदत्ताचार्य ने आश्वलायन गृह्यमन्त्र व्याख्या में इस मन्त्र की इसी आशय की व्याख्या की है। उनके शब्द ये हैं

एवम् उक्तेन प्रकारेण यौवनम् अनुनीय (अथ) अनन्तरम् (जिव्री) जीर्णौ सन्तौ आवां दम्पती (विदथम्) यज्ञ नामैतत् यज्ञम् (आवदाथः) आवदाव श्रौतस्मार्तकर्मविषयां कथां कीर्तयिष्याव इत्यर्थः॥

(आश्वलायन गृह्यमन्त्रव्याख्या श्री हरदत्ताचार्य कृत–पृ० २१) ॥

यहां वृद्धता आवश्यक रूप में आयु विषयक नहीं किन्तु ज्ञान विषयक है जैसे कि "न तेन वृद्धो भवति, येनास्य पलितं शिरः। योवै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥"(मनु२।१५६) में कहा है कि सिर के बाल सफेद होने से कोई वृद्ध नहीं कहलाता जो युवावस्था में भी वेदों का विशेष ज्ञाता है उसे (ज्ञानदृष्टि से) विद्वान् वृद्ध ही कहते हैं। पूर्व मन्त्र के साथ इसकी सङ्गति स्पष्ट है कि अपने ज्ञान को परिपक्व बनाकर पति पत्नी को उस विषयक उपदेश अन्यों को देना चाहिये।

स्त्रियों की वैदिक भावना प्रदर्शक सूक्त :—

विस्तार भय से सूर्या सूक्त के अन्य मन्त्रों का उल्लेख न करते हुए हम ऋग्वेद १०।१५६ के २, ३ मन्त्रों को यहां अर्थ सहित उद्धृत करते हैं जिन में स्त्रियों की वैदिक भावना का बड़ा उत्तम प्रतिपादन उनके मुख से करवाया गया है। इस सूक्त के प्रथम ३ मन्त्र निम्न लिखित हैं :—

उदसौ सूर्यो अगाद्, उदयं मामको भगः।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥
अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी। ममेदनु क्रतुं
पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥ १०-१५६-२
ममपुत्राः शत्रुहणोऽथे मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥

इन मन्त्रों का तात्पर्य यह है कि सूर्य के उदय के साथ २ मेरे सौभाग्य की भी वृद्धि हो रही है। मैं अपने पति देव को प्राप्त-करके विरोधियों को पराजित करने वाली और सहन शीला बनूं। (अहं केतुः) मैं वेद ज्ञान का श्रवण कराने वाली हूँ। (केतु शब्द उणादि कोष के चायः की, १।७४ इस सूत्र के अनुसार चायृ निशामने इस धातु से बनता है जिसका अर्थ सुनाना है- अतः उपर्युक्त अर्थ किया गया है। श्री सायणाचार्य ने भी इसका अर्थ 'केतयित्री- सर्वस्य ज्ञात्री भवामि, ऐसा किया

है जिसका भाव ज्ञानसम्पन्ना का है। मैं तेजस्विनी और सभादि में प्रभावशाली भाषण करने वाली हूँ। पतिदेव मेरी इच्छा, ज्ञान व कर्म के अनुकूल कार्य करें। मेरे पुत्र शत्रुओं (आन्तरिक काम क्रोधादि तथा बाह्य दुष्ट पुरुष) का नाश करने वाले हैं और मेरी पुत्री भी ज्ञानादि गुणों के कारण विशेष रूप से चमकने वाली है [विशेषेणराजते इति विराट्] मैं स्वयं भी काम क्रोध लोभ मोहादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाली हूँ तथा मैं ऐसा व्यवहार करती हूँ जिससे मेरे पतिदेव को उत्तम यश की प्राप्ति हो।

स्त्री विषयक यह वैदिक भावना कितनी उत्तम है यह पाठक महानुभाव स्वयं विचार करें। यहाँ उग्रा, विवाचनी, संजया, आदि में सर्वत्र स्त्रीलिङ्गान्त प्रयोग हैं जिनका उच्चारण स्त्रियां ही कर सकती हैं। ऐसे सैकड़ा मन्त्रों के वेदों में होते हुये यह कहना कि स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं वस्तुतः कितना अज्ञान व पक्षपात सूचक है?

ऋषिकाएं –

ऋग्वेद के १०-१३४, ऋ० १०-३६, १०-४०, ऋ० ८-६१, १०,६५, १०-१०७, १०-१०६,१०-१५४, १०-१५६, १०-१८६, ५-२८, ८-६१ आदि सूक्तजिनकी ऋषिकाए गोधा,घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत्, निषत्, रोमशा, आदि हुई हैं इस विषय में विशेष मननीय हैं और उनकी उपस्थिति में किसी भी

निष्पक्षपात विद्वान् को यह कहने का साहस नहीं हो सकता कि स्त्रियों को वेदाध्ययन वा अध्यापन का अधिकार नहीं। ये ऋषिकाएं न केवल वेदों को पढ़तीं, उनके रहस्य को स्वयं समझतीं बल्कि उनका प्रचार करती थीं। इन ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची बृहद्देवता के २४ अध्याय में इस प्रकार पाई जाती है:-

घोषा गोधा विश्ववारा, अपालोपनिषन्निषत्
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम, अगस्त्यस्य स्वसादितिः ॥ ८४ ॥
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च, सरमा रोमशोर्वशी ।
लोपामुद्रा च नद्यश्च, यमी नारी च शश्वती ॥ ८५ ॥
श्री लक्ष्मीः सार्पराज्ञी वाक्, श्रद्धा मेधा च दक्षिणा ।
रात्री सूर्या च सावित्री, ब्रह्मवादिन्य ईरिताः ॥ ८६ ॥

ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रचार करने के कारण इन ऋषिकाओं को ब्रह्मवादिनी के नाम से पुकारा जाता है और इनका नियमपूर्वक उपनयन, वेदाध्ययन, वेदाध्यापन, गायत्री मन्त्र का उपदेश प्रदानादि होता था इस बात को हारीत धर्म सूत्र, यमस्मृति आदि के आधार पर आगे दिखाया जायगा।

यजुर्वेद के कुछ प्रमाण:—

ऋग्वेद से स्त्रियों के वेदाध्ययनादि विषयक कुछ स्पष्ट प्रमाण उद्धृत करने के बाद अब हम यजुर्वेद से इस विषयक कुछ मंत्रों का उल्लेख करते हैं।

सब से पहले हम निम्न यजुर्वेद अ० ३ के मन्त्र को लेते

हैं जिसको सब प्राचीन और नवीन भाष्यकारों ने कुमारियों की प्रार्थना का विशेष मन्त्र माना है जो यह है:—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ यजु० ३ । ६० ।

अर्थात् हम कुमारियां उत्तम पतियों को प्राप्त कराने वाले सर्वज्ञ भगवान् को स्मरण करके यज्ञ करती हैं जो हमें इस पितृ-कुल से तो छुड़ा दे किन्तु पतिकुल से हमारा कभी वियोग न कराए।

शतपथ २ । ६ । २ । १२–१४ में लिखा है:—

तदुहापि कुमार्यः परीयुः भगस्य भजामहा इति...... तासाम् उतासां मन्त्रोऽस्ति 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव............मामुतः" इति ॥

इसमें बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में जिनका और कोई अर्थ ही नहीं हो सकता यह बताया गया है कि यह कुमारियों का प्रार्थना मन्त्र है। जो लोग कन्याओं का यज्ञोपवीत तथा वेदाध्ययन का अधिकार नहीं मानते उनके लिये ये वाक्य बड़ी समस्या खड़ी कर देते हैं। क्या बिना यज्ञोपवीत धारण किये हुये कुमारियां वेद मन्त्रों का उच्चारण कर सकती हैं? वस्तुतः कन्याओं का यज्ञोपवीत संस्कार वेदादि शास्त्र सम्मत है इसको हम आगे दिखायेंगे। इस समस्या का एक बड़ा कारण यह है कि पौराणिक

भाई भी कई वार यह मान लेते हैं कि विवाहानन्तर स्त्रियां वेद मन्त्रों का किसी विशेष अवसर पर उच्चारण कर सकती हैं क्योंकि उनके लिये विवाह ही उपनयन स्थानीय है पर यहां तो स्पष्ट विवाह से पूर्व ही कुमारियों के लिये इस प्रार्थना का विधान है। कात्यायन श्रौतसूत्र ५- १०- १६में 'कुमार्यश्चोत्तरेण उभयत्र पतिकामा भगकामा वा। ऐसा सूत्र आया है जिसकी व्याख्या में महामहोपाध्याय पं० नित्यानन्द पर्वतीय ने यही लिखा है कि 'कुमार्यश्च उत्तरेण मन्त्रेण' 'त्र्यम्बकं यजामहे........ मामुतः इति। उभयत्र देववत् पितृवच्च पतिं कामयमानाः सौभाग्यं वा अग्निं त्रिः परियन्ति ॥ (का० श्रौतसूत्र भाष्य पृ० ३८५) अर्थ पूर्ववत् है।

इसका भाष्य श्री सायणाचार्य ने काण्वयसंहिता भाष्य में इस प्रकार किया है:-

कात्यायनः- कुमार्यश्चोत्तरेणेति। यजमानसम्बन्धिन्यः कुमार्योऽपि पूर्वोक्तपुरुषवद् उत्तरेण त्र्यम्बकंमन्त्रेण अग्निं त्रिः परियन्ति। पाठस्तु'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। ....पतिवेदनम्- भर्तुर्लम्भारम्- अनुकूलपति-प्रदमित्यर्थः। इतो मुक्षीय अस्मान्मातृ पितृ भ्रातृ कर्मतो मुक्ता भूयासम् (अमुतो मा मुक्षीय) विवाहादूर्ध्वं

भविष्यतः पत्युर्मुक्ता मा भूयासम् । जनकस्य गोत्रं गृहं च परित्यज्य पत्युर्गोत्रे गृहे च त्र्यम्बकप्रसादात् सर्वदा वसामीत्यर्थः ॥

(शुक्लयजुर्वेद काण्वसंहिता सायणभाष्यम्

विद्या विलास प्रेस सन् १६१५ पृ० २४- २५) अथ पूर्ववत् है। यहाँ सायणाचार्य ने भी कात्यायन श्रौत सूत्र को उद्धृत करते हुये इस मन्त्र की व्याख्या कुमारियों की भगवान् से प्रार्थना के रूप में की है कि उत्तम पति प्राप्त कराने वाले सर्वज्ञ भगवान् का हम स्मरण और उसके निमित्त यज्ञ करती हैं वह पितृ कुल से तो हमें छुड़ाए किन्तु पति कुल से हमारा वियोग कभी न करावे। ठीक यही शब्द कि 'यजमानसम्बन्धिन्यः कुमार्योऽपि पूर्वोक्त पुरुषवत् उत्तरेण त्र्यम्बकमन्त्रेण अग्निं त्रिः परियन्ति त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् इति पतिं वेदयतीति तं भर्तुर्लम्भयितारम् इत्यादि ।

शुक्ल यजुर्वेद संहिता उव्वट महीधर भाष्य निर्णय सागर प्रेस बम्बई पृ० ५८ में आये हैं।

यजु ३७।२० में यह मन्त्र आया है जो स्त्री द्वारा प्रार्थना के रूप में स्पष्ट है :—

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः ।

त्वष्टृमन्त स्त्वा सपेम पुत्रान् पशून् मयि धेहि प्रजामस्मासु धेहि अरिष्टाहं सह पत्याभूयासम् । इस में से त्वष्टृमन्त स्त्वा सपेम...अरिष्टाहंसह पत्या भूयासम्। इस भाग के विषय में शतपथ.१४।१।४।१६ कात्यायनश्रौत सूत्र २६। ४।१३ तथा उब्बट महीधर भाष्य सब सहमत हैं कि यह स्त्रियों की प्रार्थना है कि हम अपने पतियों के साथ आरोग्य सुख पूर्वक निवास करें हमें सब प्रकार के सौभाग्यकी प्राप्ति हो। शतपथ १४।१।४।१६ में लिखा है कि 'अथ पत्न्यै शिरोऽपवृत्य महावीरमीक्षमाणां वाचयति त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेमेति। (शतपथब्राह्मण वैदिकयन्त्रालय अजमेर संस्करण-पृ.६८६) अर्थात् पत्नी से इस मन्त्र का उच्चारण करवाए । कात्यायन श्रौतसूत्र २६।४।१३ में भी ऐसा ही लिखा है "त्वष्टृमन्त इत्येनां वादयति"

यही बात शतपथ और कात्यायनश्रौतसूत्रके उपर्युक्त वचनों को उद्धृत करते हुए उब्बट और महीधर नामक भाष्यकारों ने लिखी है।

'पत्नीं वाचयति महावीरमीक्षमाणाम् त्वष्टृमन्तस्त्वेति। (अरिष्टा) अनुपहिंसिता अहम् (सह पत्या) सह भर्त्रा भूयासम्। महीधर—महावीरम् ईक्षमाणाम् पत्नीम् अध्वर्युः

वाचयति त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेमेत्यादि-भर्त्रा सह अनुपहिंसिता अहं भवेयम् भर्तृमती चिरं जीवेयमित्यर्थः" शुक्लयजुर्वेद-संहिता उव्वटमहीधरभाष्यसहिता निर्णयसागर, बम्बई सन् १९२९ पृ. ५९२)

इस प्रकार यह मन्त्र पत्नी की प्रार्थना के रूप में और उस द्वारा उच्चारणीय है इस में किसी को ज़रा भी सन्देह नहीं हो सकता ।

सुप्रसिद्ध सनातनधर्मोपदेशक महर्षि दयानन्दजी के कट्टर विरोधी पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने अपने यजुर्वेद भाष्य में भी इस मन्त्र का ऊपर उद्धृत अर्थ ही किया है कि ' (पत्या)स्वामी के (सह) साथ (अरिष्टा) अनुपहिंसित (भूयासम्) हूँ अर्थात् भर्ता के साथ सुखसे चिरकाल तक जीऊं अथवा हम आपके समान न्यायवान् और दयालु पति लाभ करके(पुत्रादि आत्मसमर्पण पूर्वक आश्रित होकर) अवश्य ही चिरकाल के निमित्त विपत्ति रहित हुए हैं"

विधिः—महावीर को देखती पत्नी को अध्वर्यु यह मन्त्र बँचावै ॥ (यजुर्वेदभाष्य उत्तरार्ध पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत पृ. १३५३)

इस लेखसे भी स्त्रियों का वेदमन्त्रोच्चारण सर्वथा स्पष्टतया प्रमाणित होता है जो विना नियमित अध्ययन और अभ्यासके नहीं हो सकता ।

स्त्रियों को वेदामृत पान की स्पष्ट आज्ञाः—

ऐसे ही अन्य अनेक मन्त्रों को यजुर्वेद से उद्धृत किया जा सकता है किन्तु विस्तारभय से हम ऐसा न करते हुए यजु० १४। २ को उद्धृत करते हैं जिस में स्त्रीको सम्बोधन करते हुए वेदामृत के पान की आज्ञा दी गई है। मन्त्र इस प्रकार हैः---

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः। अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्तु इमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ यजु० १४। २।

इस मन्त्र में स्त्री को उपदेश है कि तू (कुलायिनी) कुलकी वृद्धि की कामना करनेवाली (घृतवती) घृतआदि पौष्टिक वस्तुओं का उचित प्रयोग करनेवाली और दीप्तियुक्ता (घृ-क्षरण-दीप्त्योः) वा तेजस्विनी (पुरन्धिः) बहुत बुद्धि और शुभ कर्म करने वाली होकर (पृथिव्याः स्योने सदने सीद) पृथिवी पर सुख दायक अपने घर में निवास कर। तू ऐसी गुणवती और विदुषी बन कि रुद्र और वसु ब्रह्मचारी भी तेरी विद्वत्तादि की प्रशंसा करें। सौभाग्य की प्राप्तिके लिये (इमा ब्रह्म पीपिहि) इन वेदमन्त्रों के अमृत का बार २ अच्छी प्रकार पान कर। अध्यापक उपदेशकादि उत्तम उपदेश देकर तुझे इस उच्च अवस्था प्र तिष्ठित कराएं। मन्त्र के शब्द स्पष्ट हैं और इनसे

स्त्री के लिये वेदामृत के पान की आज्ञा भी स्पष्ट है किन्तु खेद है कि सायण, उव्वट, महीधरादि पौराणिक तथा वाममार्गी भाष्यकारों ने इस मन्त्र को 'इष्टका' (ईंट) परक लगानेका उपहसनीय प्रयत्न किया है यद्यपि "इमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय" का अर्थ उन्होंने भी ऐश्वर्याय इमानि (ब्रह्माणि) मन्त्रान् (पीपिहि) आप्यायस्व मन्त्रान् प्राप्नुहि-अस्मन्मन्त्रोपहिता सौभाग्याय भवेति भावः (महीधरः) इमानिब्रह्म) ब्राह्मणानि मन्त्रात्मकानि (पीपिहि)आप्यायस्व महदैश्वर्यार्थम् । (सायणः काण्व संहिता अ० १५ भाष्ये पृष्ट ७३)। इस रूपमें किया है कि जिसका भाव यही है कि इन वेद मन्त्रों का तुम सेवन करके वृद्धि को प्राप्त हो। 'पुरन्धिः' शब्दका अर्थ निरुक्तमें 'पुरुधीः' अर्थात् बहुत बुद्धि और कर्मों वाली ऐसा किया गया है किन्तु इष्टका पर लगाने के लिये सायणाचार्य ने पुरु-बहुधा धीयतेऽवस्थाप्यत इति पुरन्धिः अनेक प्रकार से स्थापन करने योग्य ऐसा घड़ लिया है। उव्वट ने 'बहु इष्टकाजातमियं धारयति' तथा महीधरने 'बहु इष्टकाजातं दधातीति बहुधा धीयते स्थाप्यत इति वा' ऐसा किया है जो निरुक्त विरुद्ध है तथा इन मध्यकालीन भाष्यकारों की खेंचातानी का नमूना है वस्तुतः सीधे और सरल रूप

में यह मन्त्र स्त्रियों को वेदामृत के पान करने और इस प्रकार सच्चे ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश देता है।

अथर्ववेद के प्रमाणः-

अब हम अथर्ववेद के इस विषयक कुछ स्पष्ट प्रमाणों को उद्धृत करते हैं। सबसे पूर्व ११ वें काण्ड के निम्नलिखित सुप्रसिद्ध मन्त्र को हम लेते हैं। जिसमें कन्या के ब्रह्मचर्य का स्पष्ट विधान है। मन्त्र निम्न है:— **ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्** ॥ अथर्व ११। ५। १८।

श्री सायणाचार्य ने इसका भाष्य यों किया है **अत्रापि ब्रह्मचर्यं प्रशस्यते। (कन्या) अकृतविवाहा स्त्री ब्रह्मचर्यं चरन्ती तेन ब्रह्मचर्येण (युवानम्) युवत्वगुणोपेतम् उत्कृष्टं (पतिम्) (विन्दते) लभते।** अर्थात् यहां ब्रह्मचर्य की प्रशंसा है। कन्या ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करती हुई उसके द्वारा युवक उत्तम पति को प्राप्त करती है।

ब्रह्मचर्य शब्द का मुख्यार्थः—

यहां जिस 'ब्रह्मचर्य' शब्द का प्रयोग है उसकी व्याख्या सायणाचार्य ने इसी सूक्त अ० ११।७ के अनेक मन्त्रों में इस प्रकार की है। **'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति'** अ० ११।७। १७ की व्याख्या में वे लिखते हैं:-

कि 'ब्रह्मचर्येण—ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थमाचर्यम्- आच-रणीयं समिदाधानभैक्ष्यचर्योर्ध्वरेतस्कत्वादिकं ब्रह्मचारिभि-रनुष्ठीयमानं कर्म ब्रह्मचर्यम् तेन'।

अर्थात् ब्रह्म का अर्थ वेद है उसके अध्ययन के लिये जोर्म ब्रह्मचारियों द्वारा किये जाते हैं वे ब्रह्मचर्य शब्द में आते हैं। इस सूक्त के प्रथम ही मन्त्र में जो ब्रह्मचारी शब्द आया है उसकी व्याख्या में सायणाचार्य लिखते हैं:—

ब्रह्मणि-वेदात्मकेऽध्येतव्ये चरितुं शीलमस्य स तथोक्तः'

अर्थात् ब्रह्मचारी वह है जो वेद के अध्ययन में विशेष रूप से तत्पर है। ब्रह्म का अर्थ वेद होता है और चर्य में जो चर धातु है उसके अर्थ गति अर्थात् ज्ञान, गमन, प्राप्ति और भक्षण हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का मुख्य शब्दार्थ वेद का ज्ञान प्राप्त करना सिद्ध होता है। श्री शङ्कराचार्य जी ने 'सर्वे वेदा यत्पद-मामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्यो ३ मित्येतत्। इस कठोपनिषत् के वचन की व्याख्या में 'ब्रह्मचर्यम्' का अर्थ गुरुकुलवास—लक्षणम् अन्यद् वा ब्रह्मप्राप्त्यर्थम्, ऐसा किया है अर्थात् गुरुकुल में वास अथवा ब्रह्म-परमात्मा और वेद की प्राप्ति के लिये अन्य जो कार्य किया जाए ऐसा

किया है। इससे भी उपर्युक्त वेद ज्ञान रूप ब्रह्मचर्य के मुख्यार्थ का समर्थन होता है।

'दक्ष स्मृति' का निम्न श्लोक जो स्मृति चन्द्रिकाकार याज्ञिक देवण भट्ट उपाध्याय ने उपनयन संस्कार प्रकरण में उद्धृत किया है इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है:—

स्वीकरोति यदा वेदं, चरेद् वेदव्रतानि च।
ब्रह्मचारी भवेत्तावद्, ऊर्ध्वं स्नातो गृही भवेत्॥

इसके पश्चात् लिखा है 'वेदस्वीकरणं वेदार्थविचारस्यापि प्रदर्शनार्थम्। अतएव स्मृत्यन्तरे'वेदमधीत्य छन्दोविषया- नर्थान् बुध्वा स्नायात्॥

(स्मृतिचन्द्रिका संस्कारकाण्ड : मैसूर पृ० १७७)

अर्थात् जब वेद को अर्थ सहित स्वीकार करता और उसके लिये व्रतों को ग्रहण करता है तब तक वह ब्रह्मचारी कहलाता है उसके पश्चात् स्नातक बन कर गृहस्थ में प्रवेश करता है। इस प्रका अथर्ववेद के ऊपर उद्धृत मन्त्र द्वारा कन्याओं के ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदाध्ययन और तदर्थ गुरुकुल वासादि का स्पष्ट विधान सूचित होता है जिसको पक्षपात रहित कोई विद्वान् इन्कार नहीं कर सकता।

'अनडवान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति' इस वेद वाक्य का आश्रय लेकर कुछ पौराणिक पण्डित ब्रह्मचर्य का

उपस्थनिग्रह वा वीर्यरक्षण रूप संकुचित अर्थ लेने का यत्न करते हैं किन्तु उनका ऐसा करना उचित नहीं। यदि मान भी लिया जाए कि इस वाक्य में अनड्वान् और अश्व शब्द बैल और घोड़े के वाचक हैं न कि वृषभ और अश्व संज्ञक विशिष्ट गुण युक्त पुरुषों के जैसे कि काम शास्त्र में वर्णित है तो भी 'मुख्यामुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः' इस नियमानुसार यहां मुख्यार्थ का ही ग्रहण करना उचित है न कि गौण अर्थ का। महाभारत के निम्न श्लोकों से यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि केवल कुमारी के लिये ब्रह्मचारिणी शब्द का प्रयोग नहीं होता अन्यथा दोनों शब्दों का एक स्थान पर प्रयोग निरर्थक होजाता।

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा, कौमार ब्रह्मचारिणी।
योगयुक्ता दिवं याता, तपः सिद्धा तपस्विनी।
म० भा० शल्यपर्व ५४। ६।

भारद्वाजस्य दुहिता, रूपेणाप्रतिमा भुवि।
श्रुतावती नाम विभो, कुमारी ब्रह्मचारिणी॥
म० भा० शल्य पर्व ४८। २।

इसलिये ब्रह्मचर्य का मुख्यार्थ वेदाध्ययन और तदर्थ व्रत ही अथर्ववेद के ऊपर उद्धृत मन्त्र में अभिप्रेत है और कन्याओं के लिये भी उसका विधान है यह स्पष्टतया प्रमाणित हुआ।

अथर्व १४। १। ६४ में नव वधू को सम्बोधित करते हुए उपदेश दिया गया है कि:—

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके विराज ॥

अर्थात् हे वधु ! तेरे आगे, पीछे, मध्य में, अन्त में सर्वत्र वेद विषयक ज्ञान रहे। वेद ज्ञान को प्राप्त कर के तदनुसार तू अपना सारा जीवन बना। मङ्गलमयी सुखदायिनी नीरोगा होकर पति के घर में विराजमान विशेषरूप से ज्ञानादि गुणों के कारण चमकने वाली बन। इससे स्पष्ट स्त्रियों के लिये वेद विषयक ज्ञान को प्राप्त करने और तदनुसार जीवन बनाने का उपदेश देने वाला मन्त्र क्या हो सकता है ? इस पर भी स्त्रियों के वेदाध्ययन के अधिकारको अस्वीकार करना अपने पक्षपात, अज्ञान वा दुराग्रह को सूचित करता है अन्य कुछ नहीं।

इस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्व वेद के अनेक मन्त्रों से स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक यज्ञादि में भाग लेने का अधिकार स्पष्टतया प्रमाणित होता है।

'धर्मं जिज्ञासमानानां, प्रमाणं परमं श्रुतिः॥

(मनु स्मृति २।१३) इत्यादि सर्व शास्त्र सम्मत सिद्धान्त के अनुसार धर्म जानने की इच्छा रखने वालों के लिये वेद ही परम प्रमाण है। इस कारण इस अध्याय में हमने अनेक अति स्पष्ट वैदिक प्रमाणों को उद्धृत किया है।

द्वितीय अध्याय

ब्राह्मण ग्रन्थों और श्रौत सूत्रों के प्रमाण

प्रथम अध्याय में स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड के विषय में मैंने अनेक वेदमन्त्रों के प्रमाण दिये हैं। इस अध्याय में ब्राह्मण ग्रन्थों, श्रौत सूत्रों और गृह्यसूत्रों के इस विषयक प्रमाणों का उल्लेख किया जायगा। हमारे पौराणिक भाई ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद ही मानते हैं अतः उनके अनुसार तो ब्राह्मणग्रन्थों के वाक्यों की गणना भी वैदिक प्रमाणों में ही होगी किन्तु हम वेदों को ईश्वरीय ज्ञान और ब्राह्मण ग्रन्थों को "चतुर्वेद विद्भिः–ब्रह्मभिः– ब्राह्मणैः महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्या-

नानि तानि ब्राह्मणानि" इस महाभाष्यादि सम्मत व्युत्पत्ति के अनुसार महर्षियों द्वारा प्रणीत वेद व्याख्यान वा वेद भाष्य मानते हैं। इसी बात को सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० सत्यव्रत सामाश्रमी ने निरुक्तालोचन, ऐतरेयालोचन आदि ग्रन्थों में महर्षि दयानन्द के विचार का सप्रमाण समर्थन करते हुए बताया है।

ऐतरेय ब्राह्मण की एक व्याख्यायिका

ऐतरेय ब्राह्मण में इस विषयक कोई स्पष्ट प्रमाण हमारी दृष्टिमें नहीं आये किन्तु जो कुछ निर्देश पाये जाते हैं उनके आधार पर श्री पं० सत्यव्रत सामाश्रमी जी ने 'ऐतरेयालोचन' में ठीक ही लिखा है कि "तदानीन्तनस्त्रीणामप्यासीद-साधारणपाण्डित्यम्। तदग्निहोत्रकालनिर्णायिका-ख्यायाम् 'कुमारी गन्धर्वगृहीता वक्तास्मः' इत्यादि। (ऐतरेय ब्राह्मण ५। ५। २९)

अर्थात् उस समय की (ब्राह्मण काल की) स्त्रियों का भी पाण्डित्य बड़ा असाधारण था यह ऐतरेय ब्राह्मण की अग्निहोत्र काल के निर्णय विषयक आख्यायिका से पाया जाता है जो निम्न शब्दों में है "एतदु हैवोवाच कुमारी गन्धर्वगृहीता वक्तास्मो वा इदं पितृभ्यो यद्वै तदग्नि-होत्र मुभयेद्यु रहूयतान्येद्यु र्वाव तदेतर्हि हूयत इति।"(ऐतरेय

५।५।२६) इसकी व्याख्या करते हुए श्री सायणाचार्य ने लिखा है अस्मिन्नेवार्थे कुमारीवाक्यमप्युदाहरति–एतदु हैवोवाच–ऋषेः पुत्री काचिद् बाला तद्गृहस्वामिना गन्धर्वेण कदाचित् गृहीता सती प्रसङ्गादेतदेव वाक्यम् अग्निहोत्रिणामग्रं उवाच वक्तास्म इत्यादिकमेतद् वाक्यम् ॥

(ऐतरेय ब्राह्मणम् सायणाचार्य भाष्य सहितम् आनन्दाश्रम प्रेस पूना सन् १९३१ पृ० ६५८) यहां एक कुमारी के वाक्यों को आदर पूर्वक अग्निहोत्र के काल विषयक प्रसङ्ग में उद्धृत करने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ब्राह्मण काल में भी वैदिक काल की तरह कन्यायें वेदाध्ययन करतीं और वैदिक कर्म काण्ड में भाग लेती थीं। यहां तक कि बड़े-बड़े ऋषि उनकी सम्मति को आदर पूर्वक उद्धृत करते थे।

शतपथ ब्राह्मणस्थ प्रमाणः—

शतपथ ब्राह्मण के इस विषयक प्रमाण जो त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः इस यजु॥ ३। ६० की व्याख्या में 'तदुहापि कुमार्य परीयुः भगस्य भजामहा इति। तासामुतासां मन्त्रोऽस्ति त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः। इति। सा यत् इत इत्याह

ज्ञातिभ्यस्तदाह मामुत इति पतिभ्यस्तदाह पतयोह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा तस्मादाह मामुत इति ।" (शतपथ २। ६। २।१२-१४)

लिखे गये हैं उन्हें अंशतः पहले उद्धृत किया जा चुका है जिनमें त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्' इत्यादि मन्त्रों को कुमारियों की ओर से प्रार्थना के रूप में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में माना गया है। यदि जैसे कि हमारे पौराणिक भाई कहते हैं कि यज्ञोपवीत धारण व उपनयन संस्कार के विना वेद मन्त्रों का उच्चारण नहीं किया जा सकता तो इस प्रमाण से कन्याओं का उपनयन और यज्ञोपवीत भी स्वयं ध्वनित होता है। इस लिये श्री सायणाचार्य का ऐतरेय ब्राह्मण भाष्य की भूमिका का निम्न लेख वेद शास्त्र विरुद्ध होने के कारण अप्रामाणिक ठहरता है कि:—

नन्वेवं सति स्त्रीशूद्रसहिताः सर्वेऽपि वेदाधिकारिणः स्युः इष्टं मे स्यादनिष्टं मे मा भूदित्याशिषः सार्वजनीनत्वात् । मैवम् । स्त्रीशूद्रयोः सत्यप्युपायबोधार्थित्वे हेत्वन्तरेण वेदाधिकारस्य प्रतिबद्धत्वात् । उपनीतस्यैवाध्ययनाधिकारं ब्रुवच्छास्त्रमनुपनीतयोः स्त्रीशूद्रयोर्वेदाध्ययनम् अनिष्टप्राप्तिहेतुरिति बोधयति । कथं तर्हि तयोस्तदुपायावगमः, पुराणादिभिरिति ब्रूमः । अतएवोक्तम्:—

स्त्रीशूद्र द्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।
इति भारतमाख्यानं, मुनिना कृपया कृतम् इति ।
तस्मादुपनीतैरेव त्रैवर्णिकैर्वेदस्य सम्बन्धः ॥

(ऐतरेयब्राह्मणभाष्यं सायणाचार्यसहितम १ । १ पृ० १-२)

अर्थात् यद्यपि स्त्री शूद्र सब यह चाहते हैं कि हमें इष्ट की प्राप्ति हो अनिष्ट की नहीं तो भी स्त्रीशूद्रों को वेदाध्ययन में अधिकार का निषेध है। उपनयन संस्कारयुक्तों को ही अध्ययन का अधिकार है ऐसा शास्त्र में बताया गया है अतः अनुपनीत स्त्री शूद्रों का वेदाध्ययन अनिष्ट प्राप्ति का कारण है। उन को इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहारके उपायका ज्ञानतो पुराणादिके द्वारा ही हो सकता है जैसा कि भागवत पुराण के 'स्त्रीशूद्र द्विजबन्धूनाँ त्रयी न श्रुतिगोचरा' इस श्लोक में बताया गया है।

इस प्रकार के वचनों को वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों के स्पष्ट वचनों के विरुद्ध होने के कारण हम अप्रमाण मानते हैं जिसका कारण पौराणिक कुसंस्कार थे जैसा कि भागवत पुराण के वचनों को उद्धृत करने से स्पष्ट ज्ञात होता है। यजुर्वेद काण्वसंहिता अ० ३ के भाष्य में से त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्' इस वेदमन्त्र के सायण कृत भाष्य को हम पहले उद्धृत कर चुके हैं जिससे उनकी अपनी प्रतिज्ञा खण्डित होती है। क्या वे यह मानेंगे कि विना उपनयन संस्कार वा यज्ञोपवीत धारण करके कुमारियां ऐसे वेद मन्त्रों का उच्चारण और उनके

द्वारा प्रार्थना करने का अधिकार रखती हैं ?

(२) त्वष्ट्र मन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून् मयि धेहि अरिष्टाहं सह पत्या भूयासम् । इस यजु. ३७। २० की व्याख्या में शतपथ ब्राह्मण १४। १ ४। १६ में लिखा है " अथ पत्न्यै शिरोऽपवृत्य महावीरमीक्षमाणां वाचयति त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेमेति वृषा वै प्रवर्ग्यो योषा पत्नी मिथुनमेवैतत् प्रजननं क्रियते ।

(शतपथ ब्राह्मण वैदिकयन्त्रालय अजमेर १४। १। ४। १६ पृ० ६८६)

यहां त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम इत्यादि मन्त्र को पत्नी द्वारा बुलवाने का स्पष्ट विधान है।

(३) शतपथ ब्राह्मण १। ६। २। १-३५ में पत्नी संयाजन अर्थात पत्नियों द्वारा यज्ञ कराने का विशेष रूप से विधान है जहां इस प्रकार के वाक्य आये हैं 'ते वै पत्नीः संयाजयिष्यन्तः प्रति परायन्ति' (श० १। ६। २। २। १)

अथ पत्नीः संयाजयन्ति ... यज्ञस्य इमाः प्रजाः प्रजायन्ते तस्मात् पत्नीः संयाजयन्ति । (शत० १। ६। २। ५ अथ वेदं पत्नी विस्रंसयति सा विस्रंसयति "वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः" इति यदि यजुषा चिकीर्षेत एतेनैव तत्कुर्यात् । [शत० १। ६। २।

२२-२३] अथ यत् समिष्टयजुर्ंहोति प्राङ् मे यज्ञोऽस्तु संतिष्ठाता इत्यथ यद् हुत्वा समिष्टयजुः पत्नीः संयाजयेत् ॥ [श० १। ६। २। २५] [शतपथ ब्राह्मण वैदिक यन्त्रालय अजमेर संस्करण पृ० ७०)

यहां पत्नी के विशेष यज्ञ करने और वेद खोलकर उसमें से 'वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः" [यजु० २। २१] इत्यादि मन्त्रों को पढ़ने का विधान है। यह भी बताया गया है कि यज्ञ के अनुष्ठान से सन्तान उत्तम होती है अतः पत्नी द्वारा यज्ञ करवाया जाता है। इस प्रकार के वाक्यों से जो शतपथ ब्राह्मण में अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं स्त्री का वेद पढ़ने पढ़ाने और यज्ञ करने कराने का अधिकार स्पष्टतया सूचित होता है।

[४] शतपथ १३। ५। २ में यकोऽसकौ शकुन्तक इस यजु० २३।२२ के मन्त्र के कुमारियों द्वारा और माता च ते पिता च ते [यजु० २ ३। २५] ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताम् [यजु० २३। २७] यद् देवासो ललामगुम् [य० २३। २६] यद्धरिणो यवमत्ति [यजु० २३। ३०] इत्यादि के अन्य स्त्रियों द्वारा जिनमें अनुचरियां वा सेविकाएं भी संमिलित हैं बोलने का विधान है जिससे स्पष्टतया सिद्ध होता है कि शतपथ ब्राह्मण के अनुसार कुमारियों और

विवाहित स्त्रियों को वेद मन्त्र और वैदिक यज्ञादि कर्मकाण्ड में भाग लेने का अधिकार है।

विस्तारभय से शतपथ ब्राह्मण से अधिक प्रमाण न उद्धृत करते हुये अब हम कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय संहिता से कुछ इस विषयक प्रमाण उद्धृत करते हैं।

हमारे पौराणिक भाई तैत्तिरीय संहिता को साक्षात् वेद मानते हैं इसलिये उनके लिये तो इन वचनों का प्रामाण्य और भी अधिक है।

तैत्तिरीयसंहिता के कुछ प्रमाण

तैत्तिरीयसंहिता १। १। १० में

सुप्रजसस्त्वा वयं सुपत्नीरुपसेदिम।
अग्ने सपत्नदम्भनम् अदब्धासो अदाभ्यम्॥
समायुषा सं प्रजया समग्ने वर्चसा पुनः।
सं पत्नी पत्याहं गच्छे समात्मा तनुवा मम॥

इत्यादि मन्त्रों को स्त्रियों द्वारा बुलवाने का विधान है। "जघनेन पत्नी गार्हपत्यमुपसीदति सुप्रजसस्त्वा वयं सुपत्नीरुपसेदिम" इत्यादि कल्पसूत्र के वचनों को उद्धृत करते हुवे श्री सायणाचार्य ने इनकी व्याख्या इस प्रकार की है:— हे अग्ने वयं त्वाम् उपसीदामः कीदृश्यो वयम् (सुप्रजसः) शोभनप्रजोपेताः (सुपत्न्यः) शोभनः पतिर्यासां ताः।

पत्नी समायुषा सं प्रजयेत्यानीयमाने जपति हे अग्ने अहम् आयुषा संगच्छे प्रजया संगच्छे पातिव्रत्यलक्षणेन वर्चसा संगच्छे अनेन पत्या पुनः पुनर्भूत्वा संगच्छे वियोगः कदाचिदपि मा भूदित्यर्थः मम शरीरेण जीवात्मा चिरं संगच्छताम् ।" (कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता सायण भाष्य प्रथम खण्ड आनन्दाश्रम पूना संस्करण पृ० १४२, १४८)

इन मन्त्रों का अर्थ श्री सायणाचार्य की व्याख्यानुसार भी यह है कि हम पत्नियाँ अग्नि देव की उपासना करती हैं। हम उत्तम सन्तान से और उत्तम पतियों से युक्त होकर अग्नि देव की उपासना करती हैं। हम दीर्घायु, उत्तम सन्तान और पातिव्रत रूप उत्तम तेज से संयुक्त हों। पतियों से हमारा कभी वियोग न हो। इत्यादि

अनेक मन्त्रों के पत्नी द्वारा उच्चारण के विधान के अतिरिक्त तैत्तिरीय संहिता के निम्न लिखित दो सुप्रसिद्ध वचन भी द्विजों की स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड के अधिकार को स्पष्ट प्रमाणित करते हैं:—

तै० ३। ३। ३। ५ में कहा है:—

अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी ॥

अर्थात् पत्नी पुरुष का आधा अङ्ग है इसलिये पुरुष के शुभ वेदाध्ययन यज्ञयाजनादि व्रतों में सहायता देना उसका कर्त्तव्य है।

पत्नी समायुषा सं प्रजयेत्यानीयमाने जपति हे अग्ने अहम् आयुषा संगच्छे प्रजया संगच्छे पातिव्रत्यलक्षणेन वर्चसा संगच्छे अनेन पत्या पुनः पुनर्भूत्वा संगच्छे वियोगः कदाचिदपि मा भूदित्यर्थः मम शरीरेण जीवात्मा चिरं संगच्छताम् ।" (कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता सायण भाष्य प्रथम खण्ड आनन्दाश्रम पूना संस्करण पृ० १४२, १४८)

इन मन्त्रों का अर्थ श्री सायणाचार्य की व्याख्यानुसार भी यह है कि हम पत्नियाँ अग्नि देव की उपासना करती हैं। हम उत्तम सन्तान से और उत्तम पतियों से युक्त होकर अग्नि देव की उपासना करती हैं। हम दीर्घायु, उत्तम सन्तान और पातिव्रत रूप उत्तम तेज से संयुक्त हों। पतियों से हमारा कभी वियोग न हो। इत्यादि

अनेक मन्त्रों के पत्नी द्वारा उच्चारण के विधान के अतिरिक्त तैत्तिरीय संहिता के निम्न लिखित दो सुप्रसिद्ध वचन भी द्विजों की स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड के अधिकार को स्पष्ट प्रमाणित करते हैं:—

तै० ३। ३। ३। ५ में कहा है:—

अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी ॥

अर्थात् पत्नी पुरुष का आधा अङ्ग है इसलिये पुरुष के शुभ वेदाध्ययन यज्ञयाजनादि व्रतों में सहायता देना उसका कर्त्तव्य है।

तै० २। २। ६ में कहा है:—

अयज्ञो वा एष योऽपत्नीकः ॥

अर्थात् पत्नी के विना (उसके विद्यमान होते हुये) जो यज्ञ किया जाता है वह ठीक अर्थों में यज्ञ नहीं कहला सकता। ब्रह्मयज्ञ का पञ्च दैनिक यज्ञों में प्रथम स्थान है जिसका अर्थ मनुस्मृति के "अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः" मनु० ३। ७० इत्यादि के अनुसार न केवल वेद का अध्ययन बल्कि अध्यापन अथवा पढ़ाना है। ब्राह्मणादि का यह यज्ञ पत्नी के विना अयज्ञ वा अपूर्ण कहलाता है। अतः स्पष्ट है कि जिस प्रकार ब्राह्मण पुरुषों को वेदों का अध्ययन अध्यापनादि कार्य करना चाहिये वैसे ब्राह्मणियों को भी करना चाहिये तभी उनका यज्ञ सफल और पूर्ण कहला सकेगा अन्यथा नहीं।

अब हम श्रौत सूत्रों में पाये जाने वाले इस विषयक कुछ स्पष्ट प्रमाणों का उल्लेख करना चाहते हैं। सब से पूर्व हम कात्यायन श्रौतसूत्र को लेते हैं जिसमें मुख्यतया यजुर्वेद के मन्त्रों के विनियोग को दिखाया गया है। यद्यपि इस तथा अन्य श्रौत सूत्रों में वाममार्गियों ने अनेक प्रक्षेप किये हैं तथापि स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड में भाग लेने विषयक प्रमाण उनमें स्पष्ट पाये जाते हैं इससे कोई निष्पक्ष विचारशील व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता।

कात्यायन श्रौत्र सूत्र से कुछ प्रमाण

कात्यायन श्रौत सूत्र १।१।७ में एक सूत्र है 'स्त्री चाविशेषात्' जिसकी व्याख्या मूल के अनुसार भाष्यकार कर्काचार्य ने इस प्रकार की है:—

'ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, स्वर्गकामो यजेत' इति च विशिष्टलिङ्गश्रवणात् स्त्रिया अनधिकारे प्राप्त इदमाह ।

"स्त्री चाविशेषात्"

स्त्री चाधिक्रियते कुत एतत् अविशेषात् यस्माच्छ्रूयमाणमप्येतल्लिङ्गं न विशेषकं भवति अतो न पुंसामेवाधिकार इति । उद्दिश्यमानविशेषणं ह्येतत् स्वर्गकामो यजेतेति । विधिसंस्पर्शाभावादविवक्षितं लिङ्गं संख्या च ....तस्मात् स्त्रिया अप्यधिकारः ।

अर्थात् ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत, स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि वाक्यों में पुंल्लिङ्ग का प्रयोग है इस लिये अग्निहोत्र तथा यज्ञादि का अधिकार पुरुष का है स्त्री का नहीं। इस पूर्व पक्ष को उठा कर उसका कात्यायनाचार्य उत्तर देते हैं कि 'स्त्री च अविशेषात्' अर्थात् स्त्री का भी यज्ञादि में अधिकार है क्योंकि यहां पुंल्लिङ्ग का सामान्य प्रयोग है विशेष रूप से नहीं कि जिस से स्त्री के अधिकार का निषेध हो। यहां प्रयुक्त पुंल्लिङ्ग

और एक वचन अविवक्षित हैं अर्थात् उनसे वक्ता का तात्पर्य नहीं कि एक ही पुरुष यज्ञ करे या अग्निहोत्र करे बल्कि जो कोई स्वर्ग (सुख) की कामना करता है (चाहे वह पुरुष है वा स्त्री) यज्ञ करे इतना ही तात्पर्य है। इसी प्रकरण में दूसरा सूत्र इस प्रकार है:—

"दर्शनाच्च"

उसकी व्याख्या मूल के अनुसार कर्काचार्य ने इस प्रकार की है कि:—

'दृश्यते चायमर्थो यथा स्त्रिया अप्यधिकार इति। मेखलया यजमानं दीक्षयति योक्त्रेण पत्नीम् इति योक्त्रविधिपरे वाक्ये पत्न्या अधिकारं प्रदर्शयति। सा च पुंसा सहाधिक्रियते न पृथक्। येनैकस्मिन् कर्मणि पत्नीसाध्याः पदार्था दृश्यन्ते यजमानसाध्याश्च। "पत्नी आज्यमवेक्षते यजमानो वेदं बध्नातीति। अपि च तयोः समस्वकं द्रव्यं स्मर्यते धर्मार्थकामेषु चानतिचारः। तस्मात् सहाधिक्रियते।

"तुल्यफलत्वाच्च"

कुत एतत् सूत्रकारप्रस्थानात् पत्नीः प्रकृत्याह 'अनुचरीर्वा फलाधिकारादितरासाम्।' क्रियाफलं च सकलम्

एकैकस्य भवति न विभागेन । स्वर्गकामो यजेतेत्यनेन यथा यजमानोऽभिधीयते एवं पत्न्यपीति। यथा यागेन यजमानः फलं साधयति तथा पत्न्यपीति ।" (कात्यायन श्रौत सूत्रं कर्काचार्यभाष्यसहितम् चौखम्भा सीरीज बनारस प्रथम भाग पृ० ५-६)

इस सन्दर्भ का तात्पर्य यह है कि यज्ञ में स्त्री-पुरुष दोनों का अधिकार है। मेखला से जैसे यजमान को दीक्षित किया जाता है योक्त्र से पत्नी को अतः दोनों का समान अधिकार है। धर्म, अर्थ, काम तीनों में पति के साथ पत्नी का समान सम्बन्ध होना चाहिये कभी व्यभिचार वा अतिक्रमण (उल्लङ्घन) न होना चाहिये ऐसी शास्त्रीय विधि है अतः शास्त्र के अनुसार यज्ञादि में पति-पत्नी दोनों का समान अधिकार है। पति-पत्नी दोनों को यज्ञ का फल मिलता है इत्यादि ।

इस प्रकार सामान्य रूप से यज्ञ में पति पत्नी के समान अधिकार का प्रतिपादन कर के अन्य अनेक स्थानों पर पत्नी द्वारा मन्त्रों का उच्चारण तथा अन्य क्रिया कलाप का कात्यायन श्रौत सूत्र में प्रतिपादन है जिसका कुछ निर्देश पहले भी प्रकरणवश किया जा चुका है। उदाहरणार्थ कात्यायन श्रौत सूत्र के इष्टि निरूपणाध्याय तृतीय अध्याय की अष्टमी कण्डिका के २य सूत्र में लिखा है:—

पत्नी वेदं प्रमुञ्चति वेदोऽसीति योक्त्रं च "प्र मा

मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन मा ऽबध्नात् सविता सुशेवः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके ऽरिष्टां मा सह पत्या दधातु "इति।

यह ऋ० १०।८५। का मन्त्र 'प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् ……' है जिसको थोड़े से परिवर्तनके साथ पत्नी द्वारा उच्चारण करवाने का यहां विधान है।

(३) कात्यायन श्रौत सूत्र ४। १। २२ में लिखा है 'आधत्तेति मध्यमपिण्डं पत्नी प्राश्नाति पुत्रकामा"

इस की व्याख्या में महामहोपाध्याय पं० नित्यानन्द पर्वतीय कृत टिप्पणी में लिखा है प्रसव समर्थेति वाक्यशेषः। पुत्र-कामा यजमानपत्नी "आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्कर-स्रजम्। यथेह पुरुषो ऽसत्॥ (यजु० २। ३३) इत्यनेन मन्त्रेण मध्यमपिण्डं प्राश्नाति भुंक्त इत्यर्थः। (कात्यायन श्रौत सूत्र प्रथम भाग कर्काचार्य भाष्य तथा नित्या-नन्द पर्वतीय टिप्पणी सहित पृ० २६६)

तात्पर्य यह है कि पुत्र की कामनावाली स्त्री 'आधत्त पितरो गर्भम्। इस यजुर्वेद २। ३३ के मन्त्र का उच्चारण कर के मध्यम पिण्ड वा ग्रास को खाती है।

(४) कात्यायन श्रौ० सू० ५। १०-१३-में लिखा है

' अग्निं त्रिः परियन्ति पितृवत् सव्योरूनाघ्नानाः त्र्यम्बक मिति । देववद् वा ॥ ५-१०-१४ कुमार्यश्चोत्तरेणोभयत्र पतिकामा भगकामा वा ५-१०-१६ उत्तरेण मन्त्रेण त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥" इति । उभयत्र देववत् पितृवच्च पतिं कामयमानाः सौभाग्यं वेति" (का० श्रौ० सू० पृ० ३८५) यहां कुमारियों के लिये 'यजु० ३ । ६० के 'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करके प्रार्थना और अग्नि की परिक्रमा का विधान है।

(५) कात्यायन श्रौ० सू० ६ । ६ । ३ में पत्नी के वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि "यजु० ६ । १४ के उच्चारण का विधान है।

(६) कात्यायन श्रौत्र सूत्र २६ । ४ १३ में त्वष्टृ मन्त इत्येनां वाचयति महावीरमीक्षमाणाम् ॥ इस पर भाष्यकार कर्काचार्य ने शतपथ ब्राह्मण के पूर्वोद्धृत वाक्य का उल्लेख "अपोर्णोति पत्नीशिरः इस पूर्व सूत्र की व्याख्या में किया है तथा च श्रुतिः अथ पत्न्यै शिरोऽपवृत्य महावीरमीक्षमाणां

वाचयति (शत० ब्रा० १४-१-४-१६) पं० गोपाल शास्त्री व्याकरणाचार्य प्रोफेसर गवर्मेन्ट संस्कृत कालेज बनारस ने इसकी टिप्पणी में लिखा है "त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् मयि धेहि प्रजामस्मासु धेहि अरिष्टाहं सह पत्या भूयासम्" (वाजसनेय यजुर्वेद संहिता ३७-२०)। अनेन महावीरम् ईक्षमाणाम् अपनीतशिरोवस्त्रां घर्मं पश्यन्तीम् अध्वर्युर्वाचयतीत्यर्थः ॥ (कात्यायन श्रौत सूत्र कर्काचार्य भाष्य सहितम् द्वितीयो भागः पृ० ४३८ विद्या विलास प्रेस बनारस) यहां शतपथ ब्राह्मण और कात्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार पत्नी द्वारा त्वष्टृ मन्तस्त्वा सपेम अरिष्टाहं सह पत्या भूयासम्' इस यजुर्वेद के मन्त्र बुलवाने का विधान है।

(६) कात्यायन श्रौत सूत्र २६।७। २८ में पत्नी सहित यजमान के "सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।" इस यजुर्वेद संहिता अ० ३८ म० २३ के पढ़ने का विधान निम्न सूत्र द्वारा है 'चात्वाले मार्जयन्ते सपत्नीकाः सुमित्रिया न इति" (का० श्रौ० २६।७।१)

इस पर टिप्पणी करते हुए प्रो० गोपाल शास्त्री व्याकरणाचार्य ने लिखा है:—

अथ ऋत्विकपत्नीयजमानाः चात्वाले मार्जयन्ते

'सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु' (वाजसनेय संहिता ३८-२३) इत्यञ्जलिनाप उपाददति।—पत्न्या अपि मार्जन-मन्त्रपाठो भवत्येव (कात्यायनश्रौत सूत्र २य भाग पृ० ४५० विद्याविलास प्रेस बनारस)

यहां टिप्पणीकार ने सूत्र के आधार पर स्पष्ट लिख दिया कि पत्नी का भी मार्जन मन्त्र सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु के पाठ का विधान है।

ऐसे ही यजु २३ वें अध्याय के अनेक मन्त्रों गणानां त्वा गणपतिं हवामहे (२३-१६) इत्यादि का कुमारियों और अन्य स्त्रियों द्वारा उच्चारण का कात्यायन श्रौतसूत्र अ० २० कण्डिका ६ में वाचयति पत्नीर्नयन् अम्ब इति ॥ का २०।६।१२-अश्वं त्रिस्त्रिः परियन्ति पितृवन्मध्ये गणानां प्रियाणां निधिम् इति ॥का २०।६।१३ इत्यादि सूत्रों द्वारा विधान है। विस्तार भय से हम उन सब सूत्रों और मन्त्रों का यहां उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझते। जब तक कुमारियों तथा अन्य स्त्रियों ने नियम पूर्वक वेद और वेदाङ्ग व्याकरण का अध्ययन न किया हो वे अध्वर्यु द्वारा बुलवाने पर भी मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण नही कर सकतीं। यज्ञों में अशुद्ध मन्त्र पाठ का 'यज्ञकर्मणि पुनर्नाप भाषन्ते', 'दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं

हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ।" इत्यादि महा-भाष्योक्तवचनों में प्रबल निषेध है अतः न केवल वेदों और ब्राह्मणों प्रत्युत कात्यायन श्रौत सूत्र के अनुसार भी स्त्रियों का वेदाध्ययन और वैदिक कर्म काण्ड का अधिकार स्पष्ट सूचित होता है।

लाट्यायन श्रौतसूत्र का प्रमाण

अब हम लाट्यायन श्रौत सूत्र के कुछ प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिनमें स्त्रियों के सामवेद मन्त्र गायन का इन सूत्रों द्वारा विधान है:—

"निधनायैव स्तौर्भी वाचं विसृजेत् ।

(२) निधनं नाम पञ्चभिः सप्तभिर्वा भागैरुपेतस्य साम्नोऽन्तिमो भागः। उपग्रहप्रभृतीनि स्वरयन्त उपेयुर्ये धर्म उपयुक्ताः स्युः।

(३) पत्नी च उपग्रहप्रभृतीनि निधनान्युपेयादिति ॥

पत्नी सामवेद के मन्त्रों का स्वर सहित गायन कर सके इसके लिये अति विशेष नियमित अभ्यास की आवश्यकता है। लाट्यायन श्रौत सूत्र के ऊपर उद्धृत सूत्रों के अनुसार स्त्रियों का वेदाध्ययन स्वर सहित करने और सामगायन का अधिकार स्पष्ट सूचित होता है।

शाङ्खायन श्रौत सूत्र के प्रमाण ।

शाङ्खायन श्रौत सूत्र अ० १ सू० क० १२-१३ में यह विधान पाया जाता है।

'घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सह श्रियं वेदो दधातु वाजिनम्' इति वेदे पत्नीं वाचयति, अर्थात् वेद में से घृत वन्तं कुलायिनं' इस मन्त्र का पत्नी से पाठ करवाए, इस से भी स्त्री का वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड में भाग लेने का अधिकार प्रमाणित होता है।

आश्वलायन श्रौत सूत्र १। ११। १ में लिखा है कि वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेद् होताध्वर्युर्वा वेदोऽसि वित्तिरसि विदेय कर्मणीष्टं करणमसि ॥ (आश्वलायन श्रौत सूत्र आनन्दाश्रम प्रेस पृ० ३२-३३

अर्थात् होता या अध्वर्यु पत्नी के हाथ में वेद देकर 'वेदोऽसि वित्तिरसि' इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करवाये। इसी श्रौत सूत्र में लिखा है।

अभिमृश्य वाचयेत् पूर्णमसि पूर्णं मे भूयाः सुपूर्ण मसि सुपूर्णं मे भूयाः सदसि सन्मे भूयाः सर्वमसि सर्वं मे भूयाः अक्षितिरसि मा मे क्षेष्ठां इति।

अर्थात् पत्नी से पूर्णमसि पूर्णं मे भूयाः इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण करवाये।

ऐसे ही अन्य श्रौत सूत्रों में भी स्त्रियों के वेद मन्त्रों के पाठ तथा वैदिक कर्मकाण्ड में भाग लेने के अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिनको विस्तार भय से यहां उद्धृत नहीं किया जा सकता।

व्योमसंहिता का स्पष्ट प्रमाण

व्योमसंहिता नामक एक अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है जो आज कल उपलब्ध नहीं होता किन्तु जिसके अनेक वचन सुप्रसिद्ध द्वैतवादी आचार्य स्वामी आनन्दतीर्थ जी (श्री मध्वाचार्य) ने अपने ग्रन्थों में उद्धृत किये हैं। इनमें से निम्न वचन प्रस्तुत विषय में विशेष उल्लेखनीय है:—

'आहुरप्युत्तमस्त्रीणाम्, अधिकारं तु वैदिके।
यथोर्वशी यमी चैव, शच्याद्याश्च तथाऽपराः॥

(श्री मध्वाचार्य कृत ब्रह्म सूत्र भाष्य पृ० ८४ कुम्भ घोणम में उद्धृत)।

अर्थात् उत्तम स्त्रियों का वेदाध्ययन और वैदिक कर्म काण्ड में भी अधिकार है जैसे कि उर्वशी, यमी, शची इत्यादि प्राचीन काल में ऋषिकायें हुई हैं।

—•※•—

तृतीय अध्याय

गृह्यसूत्रों के प्रमाण

अब हम इस विषय पर प्रकाश डालने वाले गृह्यसूत्रों के कुछ स्पष्ट प्रमाणों को यहां उद्धृत करना चाहते हैं। आशा है निष्पक्षपात विद्वान उन पर गम्भीरता से विचार करेंगे।

पारस्कर गृह्यसूत्र के कुछ वचन

जो गृह्यसूत्र आजकल उपलब्ध होते हैं उनमें पारस्कर गृह्यसूत्र का एक प्रमुख स्थान है क्यों कि इसके आधार पर विवाह संस्कारादि अनेक प्रान्तों में प्रचलित हैं। इसके श्री कर्कोपाध्याय रामकृष्ण दीक्षित, जयराम, हरिहर, गदाधर तथा श्री विश्वनाथ ये छः भाष्यकार प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त धर्मविज्ञान महाविद्यालय बनारस के अध्यक्ष श्री विद्याधर शर्मा कृत व्याख्या और श्री वेणीराम शर्मा कृत विवृति आदि भी इस गृह्यसूत्र पर विद्यमान हैं जिससे इसकी लोकप्रियता का पता लगता है। इस गृह्यसूत्र में अनेक मन्त्रों के स्त्रियों द्वारा उच्चारण कराने का विधान है। उदाहरणार्थ विवाह के अवसर पर जो लाजाहुति दी जाती है उसके सम्बन्ध में पारस्कर गृह्यसूत्र प्रथम काण्ड पंचम कण्डिका में निम्न वचन हैं:—

कुमार्या भ्राता शमीपलाशमिश्रान् लाजान् अञ्जलिना-ञ्जलावावपति तान् जुहोति संहतेन तिष्ठन्ती अर्यमणं देवं कन्याऽग्निमयक्षत। स नो अर्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः स्वाहा ॥ इयं नार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका। आयुष्मानस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा ॥ इमाँल्लाजानावपाम्यग्नौ समृद्धिकरणं तव। मम तुभ्यं च संवननं तदग्निरनुमन्यतामियं स्वाहा ॥

(पारस्कर गृह्यसूत्र १।५।१-२)

इस मूल पाठ से स्पष्ट है कि कन्या ही अर्यमणं नु देवम् इयं नार्युप ब्रूते–इमान् लाजानावपामि। इन तीन मन्त्रों का पाठ करके उनसे लाजों की आहुति डालती है। ऐसा ही प्रायः सब भाष्यकारों ने माना है। उदाहरणार्थ कर्काचार्य ने लिखा हैः–संहतेनाञ्जलिना तिष्ठती (वधूः) प्रतिमन्त्रं लाजान् जुहोति।" जयरामाचार्य ने इसकी व्याख्या में स्पष्ट लिखा है कि–"अत्रेदं मन्त्रत्रयं कन्यैव वरपाठिता पठति।" अर्थात इन तीनों मन्त्रों को वर से प्रेरित कन्या ही स्वयं पढ़ती है। (देखो पारस्कर गृह्यसूत्रम्–पञ्चभाष्योपेतम् गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बई पृ. ८०)

गदाधराचार्य ने भी मन्त्रों की व्याख्या करते हुए लिखा है

कि—'अत्रेदं मन्त्रत्रयं कन्यैव वर पाठिता पठति" अर्थात् इन तीनों मन्त्रों को वर से प्रेरित कन्या ही पढ़ती है।

श्री विश्वनाथाचार्य ने इन मन्त्रों के विषय में लिखा है—'एभिस्त्रिभिर्मन्त्रैराहुतित्रयं कन्या जुहोत्यञ्जलिनेत्यर्थः।' अर्थात् इन तीन मन्त्रों का उच्चारण करके उनके द्वारा कन्या आहुति देती है।

हरिहराचार्य ने भी इसी प्रकार लिखा है कि—'सा (कन्या) अञ्जलिस्थान् लाजान् संहतेन मिलितेनाञ्जलिना जुहोति विवाहाग्नौ प्रक्षिपति (तिष्ठती) ऊर्ध्वा। अर्यमणं देवमिति प्रथमम्, इयं नार्युपब्रूत इति द्वितीयम्, इमांल्लाजानावपामीति तृतीयम्।" (पारस्कर गृह्य सूत्रं पञ्चभाष्योपेतम् पृ० ८१)

श्री वेणीराम शर्मा की विवृति में भी (संहतेन) संमिलितेन-अञ्जलिना (जुहोति) विवाहाग्नौ प्रक्षिपति अर्यमणम् इत्यादिभिर्मन्त्रैः।"

(विवृति सहित पारस्कर गृह्यसूत्र मा० प्रिंटिंग वर्क्स बनारस में मुद्रित पृ० ३१)।

ये शब्द हैं जिनका अर्थ स्पष्ट है कि वधू 'अर्यमणं देवम्' इत्यादि मन्त्रों से लाजों की आहुति अग्नि में डालती है। पं० विद्याधर जी शर्मा ने अपनी टीका में 'इयं नारी' की व्याख्या

में लिखा है 'इयं नारी वधूः मदूरूणा' अर्थात् मैं वधू यह प्रार्थना करती हूँ कि मेरे पति देव को दीर्घ आयु प्राप्त हो और मेरे सब सम्बन्धी फलें फूलें।

(२) पारस्कर गृह्य सुत्र प्रथमकाण्ड अष्टमी कण्डिका में विवाह प्रकरण में सूर्यदर्शन की विधि निम्न शब्दों में पाई जाती है।

'अथैनां सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति'

अर्थात तच्चक्षुर्देव हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥ (यजु. ३६।२४)

इस मन्त्र का पाठ कराकर वर, वधू को सूर्य का दर्शन करवाता है।

इस सूत्र के भाष्य में हरिहराचार्य, जयरामाचार्य, कर्काचार्य आदि सब भाष्यकारों ने यही माना है कि इस मन्त्र का उच्चारण वर की प्रेरणा से वधू करती है उदाहरणार्थ हरिहराचार्य ने लिखा है:—

वधूर्वरप्रेषिता सती तच्चक्षुरिति मन्त्रेण स्वयं पठितेन सूर्यं निरीक्षते॥ (हरिहराचार्यभाष्य पारस्कर गृह्यसूत्र पञ्चभाष्योपेत पृ० ८८)

अर्थात् वर से प्रेरित होकर वधू "तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्" इस मन्त्र का स्वयं पाठ करके सूर्य को देखती है ।

जयरामाचार्य ने इसके भाष्य में लिखा है—

'ततश्च तच्चक्षुरिति मन्त्रेणोदीक्षते कन्या। (म. ८७) ऐसे ही कर्काचार्य ने लिखा है कि 'तच्चक्षुरित्यनेन मन्त्रेणोदीक्षते कन्या' अर्थात् 'तच्चक्षुर्देवहितम्' इस मन्त्र के पाठ के साथ कन्या सूर्य की ओर देखती है। सूत्र तथा भाष्य के इतना स्पष्ट होते हुए भी पं० दीनानाथ जी शास्त्री का यह लिखना कि 'इसका कर्ता वर है, मन्त्रपाठ का कर्ता भी वही है, ('सिद्धान्त' ७ मई १९४६ का अङ्क) उनके दुराग्रह को सूचित करता है।।

(४) पारस्कर गृह्यसूत्र प्रथम काण्ड चतुर्थी कण्डिका के विवाह प्रकरण में एक विधि निम्न मन्त्र के साथ दी गई है कि 'अथैनौ (वधूवरौ) समञ्जयति 'समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ। ऋ. (१०।८५।४७)

'समञ्जन' का अर्थ कुछ भाष्यकारों ने 'सम्मुखीकरणम्' एक दूसरे के सम्मुख कराना और कुछ ने एक दूसरे के शरीर का स्पर्श 'गात्रविश्लेषणम्' किया है। मन्त्र में 'नौ' इस

द्विवचन का प्रयोग है जिस का अर्थ यह बनता है कि सब देव (सत्यनिष्ठ विद्वान्) हमारे हृदयों और मनों को विशिष्ट गुणों से सुसंस्कृत करें (गुणातिशयाधानेन संस्कुर्वन्तु-गदाधरः)। प्रजापति और धर्म का उपदेश करने वाली देवता (धर्मोपदेष्ट्री देवता। गदाधरः) हमारे हृदयों को मिलावे। मन्त्र में दो वार 'नौ' इस द्विवचनान्त प्रयोग से यह स्पष्ट है कि इस मन्त्र का पाठ वर वधू दोनों को करना चाहिये। यही मत भर्तृयज्ञादि कुछ प्राचीन भाष्यकारों ने प्रकट किया है जैसे कि गदाधर के भाष्य में लिखा है कि "उभयोः (वर वध्वोः) मन्त्रपाठ इति भर्तृयज्ञः" अर्थात् वर वधू दोनों इस वेद मन्त्र का पाठ करते हैं ऐसा भर्तृयज्ञ आचार्य का मत है। यद्यपि कई भाष्यकार केवल वर द्वारा इस मन्त्र का पाठ मानते हैं पर मन्त्र के शब्दों द्वारा भर्तृयज्ञ आचार्य के विचार का ही समर्थन होता है कि इसका पाठ वर वधू दोनों को करना चाहिये।

अन्य भी अनेक स्थानों पर पारस्कर गृह्य सूत्र में स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड में भाग लेने का वर्णन है किन्तु विस्तार भय से हम उन सब प्रमाणों का उल्लेख नहीं कर सकते। केवल एक दो और स्पष्ट प्रमाणों का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है।

पारस्कर गृह्य सूत्र प्रथम काण्ड की नवमी कण्डिका में लिखा

है कि पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ। पुमा-
निन्द्रश्च सूर्यश्च पुमान् संवर्ततां मयि पुनः स्वाहा' इति

गर्भकामा ॥ अर्थात् जो स्त्री गर्भ की इच्छा रखने
वाली हो वह "पुमांसौ मित्रावरुणौ पुमांसावश्विनावुभौ"
इत्यादि मन्त्र का पाठ करके आहुति दे। इसके भाष्य में
कर्काचार्य ने लिखा है कि 'पुमांसौ मित्रावरुणौ इति पूर्वा-
माहुतिं जुहोति। गर्भकामेति स्त्रीप्रत्ययनिर्देशात्
स्त्री एव जुहोति।"

(पारस्करगृह्यसूत्रं पञ्चभाष्योपेतम् पृ० ११०)

हरिहराचार्य ने लिखा है कि 'पुमांसौ मित्रावरुणौ' इत्यादिना
मन्त्रेण गर्भकामा पत्नी पूर्वामाहुतिं जुहुयात्। (पृ० १११)

गदाधराचार्य ने इसके भाष्य में निम्नलिखित दो स्मृति
वचनों को उद्धृत करते हुए मन्त्रपाठ में स्त्रियों का अधिकार
बताया है कि—

होमे कर्तारः स्वयं स्वस्याशम्भवे पत्न्यादयः।

प्रयोग रत्ने स्मृतौः—

पत्नी कुमारः पुत्रो वा, शिष्यो वाऽपि यथाक्रमम्।
पूर्वपूर्वस्य चाभावे, विदध्यादुत्तरोत्तरः॥

स्मृत्यर्थसारेऽपिः—

यजमानः प्रधानं स्यात्, पत्नी पुत्रश्च कन्यका।
ऋत्विक् शिष्यो गुरुर्भ्राता, भागिनेयः सुतापतिः।
अत्र वचनात् पत्न्यादीनां मन्त्रपाठे ऽधिकारः"

(पारस्कर गृह्यसूत्र' पञ्चभाष्योपेतम्, बम्बई पृ० ११३)

अर्थात् होम (हवन) के करने वालों में पहला स्थान स्वयं यजमान का है यदि किसी कारण वह न कर सके तो उसकी पत्नी, कुमार, पुत्र वा शिष्य इसी क्रम से एक के अभाव में दूसरा ऐसे कर लेवें ताकि ऐसा न हो कि हवन रह ही जाए। स्मृत्यर्थसार का जो वचन गदाधराचार्य ने उद्धृत किया है उसमें यजमान के पश्चात् पत्नी, फिर पुत्र और उसके बाद कन्या का स्थान हवन के करने वालों में दिया है। इस वचन को उद्धृत करते हुए गदाधराचार्य ने लिखा है कि इन वचनों के अनुसार पत्नी आदि का (जिन में कन्या भी संमिलित है) मन्त्र पाठ का अधिकार स्पष्टतया प्रमाणित होता है। कन्या का जब मन्त्र पाठ का अधिकार है तो क्या वह विना यज्ञोपवीत संस्कार के होगा यह बात विद्वान् स्वयं विचारें। यदि बिना उपनयन संस्कार के वेद मन्त्रों के उच्चारण का अधिकार नहीं प्राप्त होता तो यह स्पष्टतया सूचित होता है कि कन्याओं का भी यज्ञोपवीत संस्कार होना चाहिये।

अब हम गोभिल गृह्यसूत्र से वह प्रमाण उद्धृत करते जहां कन्या के यज्ञोपवीत धारण का अत्यन्त स्पष्ट उल्लेख है।

गोभिल गृह्यसूत्र का प्रमाण

गोभिल गृह्यसूत्र प्रपाठक १ ख० १ सू० १६ में लिखा है 'प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीम् अभ्युदानयन् जपेत् 'सोमोऽददद् गन्धर्वायेति' पश्चादग्नेः संवेष्टितं कटमेवं जातीयकं वाऽन्यत् पदा प्रवर्तयन्तीं वाचयेत् 'प्र मे पतियानः पन्थाः कल्पतामिति' ॥

यहां लिखा है कि यज्ञोपवीत धारण की हुई वधू को विवाह-मण्डप में ला कर वर 'सोमोऽदद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽददग्नये।' इस मन्त्र का उच्चारण करे। उसके पश्चात् उससे 'प्र मे पति यानः पन्थाः कल्पतां शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्' इस मन्त्र का उच्चारण करावे।

बंगाल के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान श्री पं० सत्यव्रत जी सामश्रमी ने गोभिलगृह्यसूत्र के भाष्य में 'यज्ञोपवीतिनीम्' पद का अर्थ 'यज्ञोपवीतयुतां तां कन्याम्' अर्थात् यज्ञोपवीत युक्त कन्या यह किया है। ठाकुर उदयनारायणसिंह ने गोभिल-गृह्यसूत्र के हिन्दी अनुवाद में इसका अर्थ इन शब्दों में दिया है

'तब कन्या को कपड़ा से ढाँक कर, जनेऊ पहना कर पति अपने सामने निकट लाकर 'सोमोऽददद्' मन्त्र पढ़े।

(गोभिल गृह्यसूत्र पं० सत्यव्रत सामश्रमी की संस्कृत-व्याख्या और ठाकुर उदयनारायणसिंह का हिन्दी अनुवाद, शास्त्र-प्रकाश भवन, मधुरापुर, मुजफ्फरपुर पृ० ६७)

इस सूत्र का अर्थ कुछ पौराणिक भाष्यकारों ने बदलने का यत्न किया है और 'यज्ञोपवीतिनीम्' का अर्थ 'यज्ञोपवीतवत् कृतोत्तरीयाम् स्त्रीणाम् उपवीतस्याभावात्' इस प्रकार करने का अनुचित और निन्दनीय साहस किया है किन्तु यह उनकी दुराग्रह सूचक खेंचातानी है जिसका मूल सूत्र से समर्थन नहीं होता। स्त्रियों के यज्ञोपवीत विषयक कुछ अन्य प्रमाण प्रसङ्गवश प्रस्तुत किये जाएंगे। अभी ऋग्वेद १०-१०९-४ के

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥

इस मन्त्र का निर्देश करना ही पर्याप्त है जहां 'उपनीता' शब्द का प्रयोग हुआ है और इस उपनीता स्त्री को दुष्टों के लिए भयंकर तथा कठिन से कठिन कार्यों के करने में समर्थ बताया है।

गोभिल गृह्य सूत्र १-४-१५ में पत्नी के प्रातः सायं होम करने की निम्न सूत्र द्वारा अनुमति है 'कामं गृह्येऽग्नौ पत्नी जुहुयात् सायं प्रातर्होमौ गृहाः पत्नी गृह्य एषोऽग्निर्भवतीति ॥'

इस के भाष्य में श्री पं० सत्यव्रत सामश्रमी ने लिखा है कि एष अग्निः गृहाय हित एव भवति पत्नी च गृहाः अतो हेतोः गृह्येऽग्नौ अत्र पत्नी यथा स्यात् तथा इच्छेच्चेत् सायं प्रातर्होमौ यथोक्तौ द्वावेव जुहुयात् ॥

जिसका हिन्दी अनुवाद करते हुए ठा० उदयनारायणसिंह ने लिखा है कि 'पत्नी को गृह कहते हैं और इस अग्नि को भी गृह्याग्नि कहते हैं इस लिये यदि पत्नी इच्छा करे तो दोनों ही होम करें। (गोभिल गृह्यसूत्र, शास्त्रप्रकाश भवन संस्करण सन १९३४ पृ० २०)

काशी संस्कृत सीरीज सं० ११८ में जो गोभिल गृह्यसूत्र श्री मुकुन्द शर्मा की मृदुला व्याख्या सहित प्रकाशित हुआ है और जिसका आधार उन्होंने चन्द्रकान्त, नारायण, भवदेव, मुरारि मिश्रादि भाष्यकारों की व्याख्या पर बताया है उसमें उपर्युक्त सूत्र पर निम्न भाष्य है :—

"कामम् इत्यनुमत्यर्थो निपातः। स्वस्यासामर्थ्ये गृह्येऽग्नौ सायं प्रातर्होमौ पत्नी (पत्यनुमता) जुहुयात् कुतः समाख्याबलादित्याह गृहा इति। तथा च स्मर्यते-

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
तया हि सहितः सर्वान् पुरुषार्थान् समश्नुते ॥

इति। ततश्च यावता होमसम्पत्तिर्भवति तावन्मात्रं मन्त्रजातं पत्नीमध्यापयेत् इति पत्नी जुहुयात् इति विधेर्गम्यते। आश्वलायनोऽपि 'पाणिगृह्यादिगृह्यं परिचरेत् स्वयं पत्नी अपि वा इत्याह। अत एव च गृह्य एषोऽग्निर्भवति गृहेषु साधुरित्यर्थः।

(गोभिलगृह्यसूत्र महामहोपाध्याय पं० मुकुन्द झा कृत मृदुला व्याख्या सहित बनारस पृ० ४४)

भाव यह है कि प्रातः सायं होम पति के असामर्थ्य से रुग्णता वा प्रवासादि के कारण, उसकी अनुमति से गृह्याग्नि में पत्नी करे क्योंकि इसे गृह्य अग्नि कहते हैं, "गृहः" का अर्थ पत्नी है उसके साथ ही पुरुष सब पुरुषार्थों का भोग करता है ऐसा स्मृतियों में कहा है इसलिए पति को चाहिए कि उतने मन्त्र पत्नी को अवश्य पढ़ा देवे जिनसे वह हवनादि अच्छी प्रकार कर सके यह 'पत्नी जुहुयात्' अर्थात् पत्नी हवन करे इस विधि से स्पष्ट सूचित होता है। आश्वलायन ने भी ऐसा ही कहा है कि विवाह संस्कार के दिन से गृह्य अग्नि में हवन अवश्य करना चाहिये यदि किसी विशेष कारण से पति न कर सके तो उसकी पत्नी आदि को यह कार्य कर लेना चाहिए। आश्वलायन गृह्यसूत्र के वचन को हम आगे उद्धृत करेंगे।

गोभिल गृह्यसूत्र १।४।१५।१९ में बलिवैश्वदेव प्रकरण में लिखा है :—

स्वयं त्वेवैतान् यावद् वसेद् बलीन् हरेत्। सू० १५ ॥ अपि वा अन्यो ब्राह्मणः ॥ १६ ॥ दम्पती एव ॥ १७ ॥ इति गृहमेधिव्रतम् ॥ १८ ॥ स्त्री ह सायं,प्रातःपुमानिति ॥१९।

इनका तात्पर्य है कि यजमान को बलिवैश्वदेव यज्ञ स्वयं करना चाहिए। अथवा यदि यह अस्वास्थ्यवश सम्भव न हो (पीड़ादौ–सत्यव्रतः) तो ब्राह्मण को अपना प्रतिनिधि बनाया जा सकता है पर यह केवल अति विशेष अवस्था में है जब कि पति पत्नी में से कोई अस्वास्थ्य के कारण इस को न कर सके क्योंकि साधारणतया पति-पत्नी दोनों का इस यज्ञ में समान अधिकार है (अत्र कार्ये 'दम्पती भार्या-पतिश्च उभौ एव-तुल्याधिकारिणौ—सत्यव्रतः) यह गृहस्थों का व्रत है। सायंकाल स्त्री बलिवैश्वदेव यज्ञ करे और प्रातः पुरुष ऐसा भी कई आचार्य कहते हैं जिसमें गोभिलाचार्य की असम्मति नहीं। [सायं स्त्री प्रातः पुमान् कुर्यादिदं बलिहरणम् इति एवं नियमः कस्यचिदाचार्यस्याभिमतः अत्राप्यस्य गोभिलस्य नासम्मतिः —सत्यव्रतः] पृ० २६ ।

[गोभिल गृह्य सूत्र—शास्त्र प्रकाश भवन संस्करण]

गोभिल गृह्यसूत्र २। २। ५–१० में लाजाहुति की विधि निम्न प्रकार वर्णित है।

"सकृत् संगृहीतं लाजानामञ्जलिं भ्राता वध्वञ्जलावावपति तं सा उपस्तीर्णाभिघारितम् अग्नौ जुहोत्यविच्छन्ती अञ्जलिम् इयं नार्युपब्रूते, अर्यमणं नु देवम्-

हरणम् इत्युत्तरयोः······परिणीता तथैवावतिष्ठते तथा-ऽऽक्रामति तथा जपति तथाऽऽवपति तथा जुहोत्येवं त्रिः ॥"
यहां वधू के

इयं नार्युपब्रूतेऽग्नौ लाजानावपन्ती ।
दीर्घायुरस्तु मे पतिः शतं वर्षाणि जीवत्वेधन्तां
ज्ञातयो मम स्वाहा ॥ (मन्त्रब्राह्मण १, २, २,)

अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत ।
स इमां देवो अर्यमा प्रेतो मुञ्चातु मामुतः स्वाहा ॥
(मन्त्र ब्राह्मण १, २, ३)

पूषणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत । स इमां देवः पूषा प्रेतो मुञ्चातु मामुतः स्वाहा ॥ (म० ब्रा० १, २, ४, २,

इन मन्त्रों को पढ़ कर लाजाहुति देने का विधान है।

श्री पण्डित सत्यव्रत जी सामश्रमी ने अपने भाष्य में "सा वधूः तं भ्रातृदत्तं लाजाञ्जलिं — इयं नार्युपब्रूते इत्यनेन मन्त्रेण अग्नौ जुहुयात् वारद्वयं कन्या स्वयमेव जुहोति अत्र च उत्तरयोः लाजहोमयोः' अर्यमणं नु देवम् पूषणं नु देवम्, इत्येतौ मन्त्रौ यथा क्रमेण प्रयोक्तव्यावित्येव विशेषः । (पृ० ७०।७१)

इत्यादि शब्दों द्वारा इसका ऊपर लिखा ही अर्थ किया है जो मूल मन्त्रों तथा सूत्रों के अनुकूल होने के कारण मान्य है। ठाकुर उदयनारायणसिंहजी ने हिन्दी अनुवाद में 'भाई की दी हुई लाजा की अञ्जलि को सावधानी से 'इयं नार्युपब्रूते' मन्त्र से वधू अग्नि में आहुति देवे। वधू परिणीता होने पर और भी बार २ लाजा होम करे किन्तु इनमें पूर्व मन्त्र न पढ़े। उसके बदले में 'अर्यमणं नु देवम्' एवं 'पूषणं नु देवम्' इन दो मन्त्रों को क्रम से पढ़े। ऐसा लिखा है जो ठीक ही है। कुछ भाष्यकारों ने "अनेन वरपठितेन मन्त्रेणेत्यर्थः इयमिति मन्त्र लिङ्गात्। अर्द्धो वा एष आत्मनो यज्जाया नाम' इति वाजसनेये ब्राह्मणे पठ्यते अतः शरीरार्द्धेन चेत् क्रियते तर्हि स्वयमेव क्रियते' इत्येवमभिधाय

विवाहे यो विधिः प्रोक्तो मन्त्रदाम्पत्यवाचकः।
वरस्तु तान् जपेत्सर्वान्, ऋत्विग् राजन्यवैश्ययोः।

इत्यादि लिख दिया है। उनका कथन है कि इन मन्त्रों का पाठ वर ही करता है क्योंकि 'अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया नाम' इस शतपथ ब्राह्मण के वचनानुसार पत्नी पति का अर्ध शरीर है अतः पत्नी के स्थान पर पति पढ़ दे तो एक ही बात है पर इस मूल विरुद्ध कल्पना का खण्डन करते हुए महा महो-

ध्याय पं० मुकुन्द शर्मा ने मृदुला व्याख्या में ठीक ही लिखा है कि:—

'वस्तुतस्तु सूत्राद् होममन्त्रपाठयोर्लाघवेनौत्सर्गिक समानकर्तृकत्वलाभाद् इयं मद्रूपा नारीत्यर्थकतया मन्त्रलिङ्गोपपत्तेश्च वधूकर्तृक एव मन्त्रपाठोऽपि।" इत्यादि

(गोभिल गृह्यसूत्र मृदुला व्याख्या सहितपृ.१४०)

अर्थात् वास्तव में यह मन्त्र पाठ वधू द्वारा ही होना चाहिए ऐसा सूत्रादि द्वारा स्पष्ट है 'इयं नारी' से तात्पर्य यहां अपने लिये है। ऐसे ही गोभिल गृह्यसूत्र २।६।१५। में लिखा है:—

अपरेणाग्निमौदको ऽनुसंव्रज्य पाणिग्राहं मूर्धदेशे ऽवसिञ्चति तथेतरां समञ्जन्तु इत्येतयर्चा।'

इस की व्याख्या में पं० सत्यव्रत जी सामश्रमी ने ठीक ही लिखा है 'समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ" इत्येतया ऋचा दम्पतीभ्याम् उच्यमानया तयो मूर्द्धदेशम् आसिञ्चेत्।"

ठा० उदय नारायणसिंह ने इसके हिन्दी अनुवाद में लिखा है कि उसी समय दम्पती-पति-पत्नी एक वाक्य से 'समञ्जन्तु' यह मन्त्र पढ़ें।(गोभिल गृह्यसूत्र पृ० ७३)

इस मन्त्र में दो बार आये 'नौ' इस द्विवचनान्त पद से उपर्युक्त व्याख्या की सत्यता प्रमाणित होती है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के प्रमाण

आश्वलायन गृह्यसूत्र में भी स्त्रियों के वेदाध्ययन, अध्यापन और वैदिक कर्मकाण्ड में भाग लेने के अनेक प्रमाण पाये जाते हैं जिन में से कुछ एक का यहां उल्लेख किया जाता है:—

(१) आश्वलायन गृह्यसूत्र के प्रथम अध्याय में अश्मारोहण विधि और ध्रुव-अरुन्धती दर्शन के पश्चात् वधू के मुख से उच्चारण कराया गया है कि 'जीवपत्नी प्रजां विन्देयेति' इस की व्याख्या में हरदत्ताचार्य ने कहा है कि 'जीवस्य पत्नी-जीवतः पत्नी-पत्युर्नो यज्ञसंयोगे इति प्रक्रिया द्रष्टव्या आयुष्मता भवता भर्त्रा सह यज्ञसंयुक्तेत्यर्थः। प्रजां पुत्रपौत्रादिलक्षणां विन्देय-लभेय विष्णोः प्रसादेनेति।"

अर्थात् मैं आयुष्मान् आप की यज्ञ के द्वारा संयुक्त पत्नी उत्तम संतान को ईश्वर की कृपा से प्राप्त करूं।

(२) नव वधूके रथ द्वारा प्रस्थान के अवसर पर निम्न विधान इसी गृह्यसूत्र में पाया जाता है। प्रयाण उपपद्यमाने

'पूषा त्वेतो नयतु हस्त गृह्याश्विना त्वा प्रवहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदासि।

(ऋग्वेद १०-८५-२६)

इसकी व्याख्या में श्री हरदत्ताचार्य ने लिखा है कि 'वधूरभिधेया हे वधु ! पूषा त्वाम् (इतः) पितृकुलात् पतिगृहं (नयतु) रथेन त्वं पितृ गृहात् पति गृहान् गच्छ गत्वा च त्वं गृहपत्नी मदीयानां गृहाणां स्वामिनी यथा सः-भवसि तथा भव । (वशिनी) आत्मवशवर्तिनी सर्वप्रजा-विषयमनुरागं कुर्वतीत्यर्थः । किं च त्वं (विदथं) यज्ञ नामैतत् श्रौतस्मार्तलक्षणं यज्ञम् (आवदासि) लोडर्थऽयं पञ्चमो लकारः आभिमुख्येन वद । श्रौतस्मार्तलक्षणानि कर्माणि कुर्वित्यर्थः । एतदुक्तं भवति मदीयान् गृहान् प्राप्य मया सार्धं श्रौतस्मार्तलक्षणेषु कर्मस्वपि कुर्वित्यर्थः ।

(आश्वलायन गृह्य मन्त्र व्याख्या हरदत्ताचार्य कृता साम्ब शिवशास्त्रिणा संशोधिता त्रिवेन्द्रम् पृ. १४)

यहां वधू को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि तुम पति के घर में जाकर घर की स्वामिनी और सब भृत्यादि को अपने वश में रखने वाली तथा सब के साथ प्रेममय व्यवहार करने वाली बनो और वेदोक्त यज्ञों का अनुष्ठान और उनका उपदेश करती रहो। विदथ का अर्थ यज्ञ निघण्टु में बताया ही गया है उसका अर्थ ज्ञान भी होता है अतः यज्ञ और ज्ञान के उपदेश में मन्त्र का तात्पर्य स्पष्ट है।

(३) आश्वलायन गृह्यसूत्र के इसी विवाह प्रकरण में १-८ में यह विधि आई है:—

"इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम् इति गृहं प्रवेशयेत्" अर्थात् इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम् अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं संस्पृशस्व अथा जिव्री विदथमावदाथः । इस मन्त्र का उच्चारण करके वधू को घर में प्रवेश कराए । इस मन्त्र की व्याख्या में श्री हरदत्ताचार्य ने लिखा है:—

गृहं प्रवेश्यमाना वधू रभिधेया...(एना) अनेन मया (पत्या) (तन्वम्) शरीरम् आत्मीयम् (संसृजस्व) संयोजय मां परिष्वजेथा इत्यर्थः। (एवमुक्तेन प्रकारेण यौवनम् अतुनीय (अथ) अनन्तरम् (जिव्री) जीर्णौ सन्तौ आवां दम्पती (विदथम्) यज्ञ नामैतद् यज्ञम् (आवदाथः) आवदाव श्रौतस्मार्तकर्मविषयां कथां कीर्तयिष्याव इत्यर्थः ॥ (आश्वलायन गृह्य मन्त्र व्याख्या श्री हरिदत्ताचार्य कृता पृ. २१)

अर्थात् वधू को सम्बोधित करते हुए वर कहता है कि तुम मुझ पति के साथ अपने शरीर का संयोग करो—मुझे आलिङ्गन करो और इस प्रकार यौवन काल को व्यतीत कर के हम दोनों आयु व ज्ञान में वृद्ध होकर यज्ञादि विषयक कथाओं का कीर्तन करेंगे—उनके विषय में नर नारियों को उपदेश देंगे।

इस प्रकार स्त्रियों का वैदिक कर्म काण्ड के करने कराने तथा वेदादि पढ़ने पढ़ाने का अधिकार स्पष्टतया सूचित होता है ।

(४) आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४ में गार्गी वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथेयी सुलभा मैत्रेयी आदि की गणना आचार्य गण में करते हुए लिखा है:—

अथ ऋषयः शतर्चिनो माध्यमा गृत्समदो विश्वामित्रो वामदेवः......गार्गी वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथेयी सुलभा मैत्रेयी—ये चान्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यन्तु इति।

इसकी व्याख्या में हरिदत्ताचार्य ने लिखा है:--

"गार्ग्यादयो ब्रह्मवादिन्य उपनिषत्सु प्रसिद्धाः।"

(आश्वलायन गृह्य मन्त्र। व्याख्या पृ. १६८)

अर्थात् गार्गी आदि ब्रह्मवादिनियां उपनिषदों में प्रसिद्ध हैं उन्हीं की गणना आचार्यगण में की गई है। ब्रह्म का अर्थ वेद होता है अतः ब्रह्मवादिनी का अर्थ वेद का उपदेश करने वाली वा वेद की कथा करने वाली यह होता है। इन ब्रह्मवादिनियों का वर्णन करते हुए हारीत धर्म सूत्र में स्पष्ट लिखा है (जैसे कि आगे स्मृति प्रकरण में कुछ विस्तार से दिखाया जाएगा) कि "तत्र ब्रह्मवादिनीनाम् उपनयनम् अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्येति॥

(हारीत धर्म सूत्र अ० २१–२२)

अर्थात् ब्रह्मवादिनियों का उपनयन संस्कार अग्निहोत्र करना, वेद का अध्ययन करना और अपने घर में भिक्षा ये कार्य विहित हैं। यह वाक्य पराशर स्मृति के सायण माधवीय

भाष्य आचार काण्ड १ अ० २ पृ० ८२ में जो Government Central Book Depot Bombay सन १८६३ में छपा उद्धृत है।

मैसूर सरकार की ओर से प्रकाशित देवण भट्टोपाध्याय कृत स्मृति चन्द्रिका के प्रथम भाग-संस्कार काण्ड के पृ. ६२ में (सन् १९१४ का संस्करण) यह वाक्य बिल्कुल इसी ऊपर उद्धृत रूप में विद्यमान है।

भट्टोजिदीक्षित द्वारा संकलित चतुर्विंशति मत संग्रह नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ के द्वितीय भाग में जो सन् १९०८ में विद्याविलास प्रेस बनारस में छपा पृ. ११३ पर हारीत धर्म सूत्र से यही वाक्य उद्धृत किए गए हैं।

निर्णय सिन्धु नामक कमलाकर विरचित ग्रन्थ में भी जो सन १९३३ में नवलकिशोर प्रेस लखनऊ में छपा पृ० ४१० पर हारीत धर्मसूत्र से यही वचन उद्धृत किये गये हैं। वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में सम्वत् १९८४ में छपे निर्णय सिन्धु में ये वाक्य पृ. ४१४ पर उद्धृत किये गये हैं।

रईस आज़म श्री भाई मनोहर लाल जी द्वारा प्रकाशित और संस्कृत भूषण शुचिव्रत लक्षणपाल शास्त्री बी. ए. द्वारा सम्पादित "ऋगर्थ सूक्त संग्रहः श्री सायणाचार्यभाष्यसहितः" के पृ. ५० पर टिप्पणी में 'अतएव हारीतेनोक्तम्—द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः-सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनाम्

उपनयनम् अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्येति ।" इस वाक्य को उद्धृत किया गया है।

भट्ट यज्ञेश्वर शर्मा रचित और डा० मङ्गल देव जी शास्त्री एम० ए०, डी० फिल, प्रिन्सिपल गवर्मेन्ट संस्कृत कालेज बनारस द्वारा सम्पादित "आर्यविद्या सुधाकरः" इस ग्रन्थ के तृतीय प्रकाश में पृ० ८५ पर टिप्पणी में महा महोपाध्याय पं० शिवदत्त शर्मा जी ने हारीत के धर्म सूत्र २१—२०—२४ से न शूद्रसमाः स्त्रियः नहि शूद्रयोनौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या जायन्ते तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः। द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनम् अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्येति। इन वाक्यों को उद्धृत किया है।

आचार्या शब्द का प्रयोग और लक्षण

"आचार्यादणत्वं च आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी' पुंयोग इत्येव'आचार्या स्वयं व्याख्यात्री" यह पाठ वैय्याकरण सिद्धान्त कौमुदी में पाया जाता है जिसकी टिप्पणी में महा महोपाध्याय श्री पं० शिवदत्त जी ने लिखा है:—

"स्यादाचार्यापि च स्वतः" मन्त्रव्याख्याकृदाचार्यः इत्यमरैकवाक्यतयाह आचार्या स्वयमिति । एतेनापि स्त्रीणां वेदाध्ययनेऽधिकारो निराबाधो दर्शितः।

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च, तमाचार्यं प्रचक्षते ।।
इति मनुवाक्येनापि स्त्रीणां वेदाध्यापनाधिकारो ध्वनितः।

(वैय्याकरण सिद्धान्त कौमुदी पं० शिवदत्तशर्मा कृत टिप्पणी-युता वेकटेश्वर प्रेस बम्बई सम्वत १९७१ पृ० ८०]

अर्थात् स्वयं वेद मन्त्रों का व्याख्यान करने वाली और मनुस्मृति प्रोक्त आचार्य लक्षणानुसार 'शिष्याओं का उपनयन संस्कार करा कर कल्प (कर्म काण्ड विधि) और रहस्य सहित वेद पढ़ाने वाली स्त्री को आचार्या कहते हैं। इस प्रकार आश्वलायन गृह्य सूत्र में गार्गी, सुलभा,वडवा आदि की आचार्यगण में गणना से स्त्रियों का न केवल वेद पढ़ने बल्कि पढ़ाने का अधिकार भी स्पष्टतया सूचित होता है।

(५) आश्वलायन गृह्य सूत्र१।९ में लिखा है कि पाणिगृह्यादि गृह्यं परिचरेत् स्वयं पत्नी अपि वा पुत्रः कुमारी अन्तेवासी वा नित्यानुगृहीतः।" आश्वलायन गृह्यसूत्र मूल निर्णय सागर बम्बई पृ. ४)

अर्थात विवाह संस्कार से प्रारम्भ करके गृह्य अग्नि अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए स्वयं, यजमान को ऐसा करना चाहिए यदि किसी अस्वस्थतादि कारणवश वह स्वयं न सके तो उसकी पत्नी को और सन्तान होने पर पुत्र वा कुमा पुत्री अथवा स्नेह पात्र शिष्य को घर में अवश्य हवन क

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च, तमाचार्यं प्रचक्षते ॥
इति मनुवाक्येनापि स्त्रीणां वेदाध्यापनाधिकारो ध्वनितः।
(वैय्याकरण सिद्धान्त कौमुदी पं० शिवदत्तशर्मा कृत टिप्पणी-
युता वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई सम्वत १६७१ पृ० ८०]

अर्थात् स्वयं वेद मन्त्रों का व्याख्यान करने वाली और मनुस्मृति प्रोक्त आचार्य लक्षणानुसार 'शिष्याओं का उपनयन संस्कार करा कर कल्प (कर्म काण्ड विधि) और रहस्य सहित वेद पढ़ाने वाली स्त्री को आचार्या कहते हैं। इस प्रकार आश्वलायन गृह्य सूत्र में गार्गी, सुलभा, वडवा आदि की आचार्यगण में गणना से स्त्रियों का न केवल वेद पढ़ने बल्कि पढ़ाने का अधिकार भी स्पष्टतया सूचित होता है।

(५) आश्वलायन गृह्य सूत्र १। ६ में लिखा है कि पाणिगृह्यादि गृह्यं परिचरेत् स्वयं पत्नी अपि वा पुत्रः कुमारी अन्तेवासी वा नित्यानुगृहीतः।" आश्वलायन गृह्यसूत्र मूल निर्णय साग[र] बम्बई पृ. ४)

अर्थात् विवाह संस्कार से प्रारम्भ करके गृह्य अग्नि में अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए स्वयं, यजमान को ऐसा करन[ा] चाहिए यदि किसी अस्वस्थतादि कारणवश वह स्वयं न क[र] सके तो उसकी पत्नी को और सन्तान होने पर पुत्र वा कुमारी पुत्री अथवा स्नेह पात्र शिष्य को घर में अवश्य हवन करन[ा]

चाहिए। यहां न केवल पत्नी का बल्कि कुमारी का अग्निहोत्र करना लिखा है जो इस दृष्टि से विशेष महत्व पूर्ण है कि इससे कन्या का यज्ञोपवीत संस्कार भी ध्वनित होता है क्योंकि यज्ञोपवीत के बिना अग्निहोत्र करने का विधान असम्भव है।

काठक गृह्य सूत्र के कुछ प्रमाण

काठक गृह्य सूत्र ३।१।३० में निम्न वचन विवाह संस्कार प्रकरण में पाये जाते हैं।

'तान्(शमीलाजान्) अविच्छिन्दती जुहोति (वधूः) अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। सो अस्मान् देवो अर्यमा प्रेतो मुञ्चतु मामुष्य गृहेभ्यः स्वाहा।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिपोषणम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो मुञ्चीय मामुष्य गृहेभ्यः स्वाहा॥

यहां वधू के लिए अर्यमणं नु देवम् तथा त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिपोषणम्'इत्यादि मन्त्रों को पढ़ कर लाजाहुति देने का विधान है। इन मन्त्रों में भगवान् से प्रार्थना है कि पति से कभी वियोग न हो।

काठक गृह्यसूत्र २७।३। में निम्न विधान पाया जाता है जो स्त्रियों के वेदाध्ययनाधिकारादि की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है:—

'अपराह्णे ऽधिवृक्षसूर्ये गृहानुपयायोजं बिभ्रतीति गृहान् प्रतिदृश्य जपति (वधूः)

(१) ऊर्जं बिभ्रती वसुवनिः सुमेधा गृहानागां मोदमाना सुवर्च्चाः। अघोरेण चक्षुषाहं मैत्रेण गृहाणां पश्यन्ती वय उत्तिरामि ॥

(२) गृहाणामायुः प्र वयं तिराम गृहा अस्माकं प्रतिरन्त्वायुः। गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये वीरघ्नी वीरपतिः सुशेवा ॥

(३) इरां वहतो घृतमुक्षमाणांस्तेष्वहं सुमनाः संविशामि ॥

(४) येषां मध्येऽधिप्रवसन्नेति सौमनसं बहु। गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ॥

(५) सूनृतावन्तः स्वधावन्त इरावन्तो हसामदाः। अक्षुध्या अतृष्या गृहा मास्मद् बिभेतन ॥

(६) उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः। अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु मे ॥

(७) उपहूताः भूरिधनाः सखायः साधुसंमदाः। अरिष्टाः सर्वपूरुषा गृहा नः सन्तु सर्वदेति ॥

इन मन्त्रों के विषय में देवपाल आदित्यदर्शनादि

भाष्यकारों ने मूल के आधार पर स्पष्ट ही लिखा है कि "वध्वा एष जपो मन्त्रलिङ्गात (देवपालः)

ततो ग्रामं प्राप्य गृहाणां समीपमागत्य ऊर्जं बिभ्रतीति गृहानवलोक्य जपति कन्या सप्तैता ऋचः। कन्याया जपः मन्त्रवर्णात् ॥ (आदित्य दर्शनः)

(काठक गृह्यसूत्रम्—विलियम कालेण्ड सम्पादितम पृ० १२० १२१ लाहौर संस्करण)

अर्थात इन मन्त्रों का उच्चारण और जप वधू करती है क्योंकि इसके स्पष्ट चिन्ह मन्त्रों में पाये जाते हैं जहां बिभ्रती मोदमाना, पश्यन्ती, वीरघ्नी, 'सुशेवा' आदि स्त्रीलिङ्गान्त शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन मन्त्रों का भावार्थ निम्न है:—

मैं स्त्री अन्न और शक्ति को धारण करती हुई तथा धन का उचित विभाग करती हुई (अन्नं धारयन्ती पुष्णती च, धनानि विभजमाना—इति देव पालः) उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (शोभनया प्रज्ञया युक्ता) प्रसन्न होती हुई तथा उत्तम कान्ति व तेज से सम्पन्न हो कर स्नेह दृष्टि से घर की ओर देखती हूँ। मैं वीरपति से युक्ता और अन्न धनादि सम्पन्ना होकर हर्षदायक गृह में प्रवेश करती हूँ। मैं प्रसन्नचित्ता होकर गवादि पशुओं और अन्नों से युक्त गृहों में प्रवेश करती हूँ।

जिन घरों में निवास करता हुआ मनुष्य सदा प्रसन्नता का लाभ करता है उन घरों का हम सदा स्मरण करती हैं। हम सदा सत्यमय वाणी का उच्चारण करें तथा पितृयज्ञादि का अनुष्ठान करते रहें (सूनृतावन्तः-सत्यवाचः स्याम पितृयज्ञकारिणः) इन गृहों में हम ने गाय, बकरी, भेड़ आदि उपयोगी पशुओं तथा अन्न रसादि का उत्तम संग्रह किया है। यहां सब परस्पर मित्र बन कर रहें जिससे सर्वदा प्रसन्नता का यहां निवास हो। किसी की हिंसा करने वाला कोई न हो।

ऊर्जं बिभ्रत, मोदमाना, पश्यन्ती, अवीरघ्नी, वीरपतिः, इरां वहती इत्यादि स्त्रीलिङ्गान्त प्रयोगों से यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि इन मन्त्रों का जाप वधू करती है न कि कोई पुरुष।

पं० दीनानाथ जी शास्त्री के सिद्धान्तानुसार एक अशिक्षिता (अविद्या) स्त्री इन मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण अर्थ ज्ञानपूर्वक कैसे कर सकती है ? मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और अर्थ ज्ञान के लिए कितने वर्षों के निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता है इस बात को न समझते हुए "पं० दीनानाथ जी बार २ लिख देते हैं कि इन मन्त्रों का स्त्री जिस किसी तरह उच्चारण कर लेगी अथवा उसका पति व पुरोहित कर लेगा पर निष्पक्षपात विद्वान् स्पष्ट देखेंगे कि यह उनकी टालमटोल है। मूल तथा भाष्य से यह स्पष्ट है कि स्त्री को शिक्षिता होना चाहिए जो मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण अर्थ ज्ञानपूर्वक कर सके क्योंकि मन्त्रों के अशुद्ध उच्चारण को बड़ा अनिष्टजनक माना गया है।

उदाहरणार्थ महाभाष्य पस्पशाह्निक में कहा है कि:—

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थ माह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥
दुष्टान् शब्दान् मा प्रयुक्ष्महीत्यध्येयं व्याकरणम्॥

(महाभाष्य आह्निक १ पृ० १५)

अर्थात् स्वर अथवा वर्ण का दोष जिस में रह गया हो ऐसा अशुद्ध प्रयुक्त शब्द उस अर्थ का ठीक कथन नहीं करता। वह वाणी में वज्र के समान यजमान का नाश करने वाला बन जाता है जैसे स्वर के अपराध से इन्द्र के शत्रु वृत्र का नाश हुआ।

इस से स्पष्ट है कि यज्ञों और संस्कारों में प्रयुक्त मन्त्रों को शुद्ध उच्चारण के लिये स्त्रियों को व्याकरणादि के उत्तम अभ्यास की आवश्यकता है।

लौगाक्षि गृह्यसूत्र के प्रमाण

लौगाक्षि गृह्यसूत्र में भी स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्म काण्ड में भाग लेने आदि के अनेक प्रमाण पाये जाते हैं।

(१) उदाहरणार्थ लौगाक्षि गृह्यसूत्र कण्डिका २५ में विवाह प्रकरण में वधू के लिये निम्न मन्त्र के बोलने का विधान है:—

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
अग्नेरनुव्रता भूत्वा सन्नह्ये सुकृताय कम्॥

यह अथर्व वेद काण्ड १४ सूक्त २ मं० ४२ का उद्धरण है जिस का अर्थ देवपाल भाष्यकार ने इस प्रकार किया है:—

अहं (सनह्ये) वस्त्रं बध्नामि किमर्थम् (सुकृताय कर्मणे) विवाहपूर्वयागदानहोमादिकर्मार्थम् ।—कीदृशी सती संनह्ये। (सौमनसम्) प्रसन्नमानसत्वं। तथा (सौभाग्यम्) भर्त्रानुकूल्यं (रयिम् च) धनमाशासमाना इच्छन्ती तथा अग्नेरनुव्रता सती आहवनीयादिपरिचरणशीला सती

सन्नह्ये । (लौगाक्षि गृह्यसूत्र निर्णयसागर प्रेस मुम्बई पं० मधुसूदन कौल शास्त्री व्याख्या सहित पृ० २२१)

अर्थात् वधू कहती है कि मैं यज्ञादि कर्म के अनुष्ठान के लिये उत्तम वस्त्र पहिनती हूं सदा प्रसन्नता, सौभाग्य और धन की कामना करती हुई मैं अग्निहोत्र करती हुई आनन्द पूर्वक रहूंगी।

(२) लौगाक्षि गृह्यसूत्र कण्डिका २५ में,

गन्धर्वं पतिवेदनं कन्या अग्निमयक्षत। सो अस्मान् देवो गन्धर्वः प्रेतो मुञ्चतु मामुष्य गृहेभ्यः स्वाहा ॥ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिपोषणम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो-र्मुक्षीय मामुष्य गृहेभ्यः स्वाहा ॥ २५ । ३२

इत्यादि मन्त्रो को पढ़ कर वधू के लिये लाजाहुति का विधान है। देवपाल भाष्यकार ने उनका अर्थ वधू की ओर से प्रार्थना रूप में ही किया है:—

गां पृथिवीं धारयतीति गन्धर्वः तमग्निं (पतिवेदनम्) पत्यु-र्लम्भयितारम् (कन्याः) अन्याः यतः (अयक्षत) इष्टवत्यः अतोऽहमपि यजे इति नारी ब्रूते इत्यर्थः। स च-देवोऽग्निः इष्टः सन् गन्धर्वः (अमुष्य) भर्त्तुः गृहेभ्यः अस्मान् मा प्रमुञ्चातु इति पूर्ववत्प्रतिषेधः।

(लौगाक्षि गृह्यसूत्र देवपाल भाष्य काश्मीरसंस्कृत ग्रन्थावलि ४९ पृ० २६८)

(त्र्यम्बकम्) शङ्करम् (यजामहे) हविर्दानेन पूजयामः (सुगन्धिम्) सुयशसम् (पतिपोषणम्) भर्तुः पोषयितारम् अहं च त्र्यम्बकस्य पूजितस्य प्रसादात् मृत्योः सकाशात् मुक्षीय····अमुष्य भर्तुः गृहेभ्यः पुनर्मा कदाचन मुक्षी-येति निषेधः ॥ (लौगाक्षिगृह्यसूत्र पृ० २६६)

भावार्थ यह है कि हम कन्याएं भगवान् की पूजा करती हैं जिससे उसकी कृपा से हमें उत्तम पति प्राप्त हों और उनसे हमारा कभी वियोग न हो।

(३) "ऊर्जं बिभ्रती वसुवनिः सुमेधाः ॥ इत्यादि मन्त्रों का उच्चारण वधू करे यह कण्डिका २७ में काठक गृह्यसूत्र के समान पृ० २८८ पर विधान है।

स्वगृहान् प्रतिदृश्य आभिमुख्येन दृष्ट्वा ऊर्जं बिभ्रती-त्यादि जपति । वध्वा एष जपो मन्त्रलिङ्गात् ऐसा पूर्ववत् पाठ पृ० २८८ में है जिसके भाष्य में देवपाल ने (सुमेधाः) शोभनया प्रज्ञया युक्ता (मोदमाना) हृष्यन्ती (सुवर्चाः) शोभनदीप्तिः इत्यादि स्त्रीपरक व्याख्या मूल-मन्त्रानुसार की है। 'सूनृतावन्तः' का अर्थ उसने 'सत्यवाचः' और 'स्वधावन्तः' का 'पितृयज्ञकारिणः' स्याम ऐसा किया है।

(४) कण्डिका ३० में गर्भाधान विषयक निम्न विधान हैः—

अथ गर्भाधानम्

तौ संविशतः ॥ २ ॥ तौ वधूवरौ एकस्मिन् शयने भवतः...अनन्तरं मन्त्रचतुष्टयजपसहितम् अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम्। इह प्रजामिह रयिं रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥

प्रजापते तन्वं मे जुषस्व त्वष्टर्देवेभिः सहसान इन्द्रः। विश्वैर्देवैर्यज्ञियैः संविदानः पुंसां बहूनां मातरः स्याम ॥

गर्भाधान के समय इन दो मन्त्रों का उच्चारण वधू और 'अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानाम्' और अहं गर्भमदधामोषधीषु' का वर करे ऐसा 'प्रथम संवेशने गर्भाधाने च वधूवरौ जपतः स्त्र्यादिव्यत्यासं कृत्वा प्रथमां स्त्री द्वितीयां वरः, तृतीयां स्त्री, चतुर्थीं वरः ॥" से स्पष्ट है। अपश्यं त्वा मनसा चेकितानम् का अर्थ देवपाल भाष्यकार ने इस प्रकार किया है:—

वधूर्वदति-हे (पुत्रकाम) त्वाम् अहम् (अपश्यम्) पश्यामि (चेकितानम्) देदीप्यमानं ब्रह्मवर्चसादिना अतिशयेन दीप्तिमन्तम् केन पश्यामि (मनसा) कीदृशम् (तपसो जातम्) तप इति प्रजापतेः सत्कर्मणश्च नाम प्रजापतेर्ब्रह्मणः सकाशाज्जातम् तपसश्चाविर्भूतम् वृद्धिं गतम्। इह

(प्रजाम्) मयि पुत्ररूपाम् (रयिं च) धनम् (रराणः) आददत् (प्रजया प्रजायस्व) प्रजामुत्पादयेत्यर्थः ।

(लौगाक्षि गृह्यसूत्र ३०।३ पृ० ३०४-३०५)

वधूराह भर्तरि प्रजापतित्वम् अध्यारोप्य हे प्रजापते मम (तन्वम्) शरीरं प्रविश......वयम् (बहूनाम्) (पुंसाम्) पुत्राणां (मातरः) निर्मात्र्यः (स्याम) ।

इन दोनों मन्त्रों का भावार्थ यह है कि:—

हे पुत्र की कामना वाले पतिदेव ! मैं ब्रह्म तेज से सम्पन्न आप को प्रीतियुक्त मन से देखती हूं ! आप मुझ द्वारा उत्तम सन्तान उत्पन्न करें। हम उत्तम पुत्रों के निर्माता हों। इत्यादि

ऐसे ही इस गृह्यसूत्र के अन्य अनेक स्थलों में स्त्रियों के लिये मन्त्रोच्चारण का विधान है जिसे विस्तार भय से नहीं दिया जा सकता।

शाङ्खायन गृह्यसूत्र का प्रमाण

इस गृह्यसूत्र में भी अनेक स्थानों पर स्त्रियों के मन्त्रोच्चारण करने और वैदिक कर्मकाण्ड में भाग लेने का विधान है उदाहरणार्थ—

(१) अ० १ ख० १७ सू० २१६ में वरवधू के लिये लिखा है कि सायं प्रातर्वैवाह्यमग्निं परिचरेयाताम् अग्नये स्वाहा स्विष्टकृते स्वाहेति ।। सू० २२० पुमांसौ मित्रावरुणौ

पुमांसावश्विनावुभौ। पुमानिन्द्रश्चाग्निश्च पुमान् संवर्ततां मयि स्वाहेति पूर्वां गर्भकामा ॥

अर्थात् पति पत्नी प्रातः सायम् अग्नये स्वाहा, स्विष्टकृते स्वाहा, इत्यादि मन्त्रों से अग्निहोत्र करें। गर्भ की कामना करने वाली पत्नी पुमांसौ मित्रावरुणौ इत्यादि वेदमन्त्र का उच्चारण करे जिस में प्रार्थना है कि 'पुमान् संवर्ततां मयि' मेरे अन्दर वीर्य सम्पन्न पुत्र उत्पन्न हो।

मानव गृह्यसूत्र के प्रमाण

मानव गृह्यसूत्र में भी स्त्रियों के मन्त्रोच्चारण और वैदिक कर्मकाण्ड में भाग लेने के कई प्रमाण मिलते हैं। उदाहरणार्थ पुरुष १ खण्ड ११ सू० २२ में लिखा है:—

उपस्ताभिचारणौः संपातं ता अविच्छिन्नैञ्जुहुतः 'अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। सोऽस्मान् देवो अर्यमा प्रेतो मुञ्चातु मामुतः स्वाहा ॥

इस की टीका में 'सनातनधर्मी' पं० भीमसेन जी ने लिखा है 'फिर बीच में न रुकते हुए धार बांध कर 'अर्यमणम्' आदि मन्त्रों से दोनों कन्या वर होम करें।

'इयं नार्युप ब्रूते' मन्त्र को कन्या पढ़े। चारों मन्त्रों के पाठ के साथ २ धीरे २ निरन्तर दोनों कन्यावर लाज गिराते हुए। (मानव गृह्यसूत्रम्- पं० भीमसेन शर्म कृतवृत्तिसहितम् वेद प्रकाश यन्त्रालय पृ० २८)

स्त्री को सम्बोधित करके पढ़े जाने वाले मन्त्र तो मानव गृह्यसूत्र में अनेक दिये हुये हैं उदाहरणार्थ पुरुषाख्य भाग २ ख० १८ में 'द्वादश गर्भवेदिन्य:' इस नाम से

'विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा॥
हिरण्मयी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे॥

इत्यादि १२ मन्त्रों का उल्लेख है जो सब स्त्रियों को लक्ष्य करके उच्चारण किये जाते हैं। 'परमात्मा तेरे गर्भ की उत्तम रीति से रक्षा करे ताकि दसवें मास में कुशल पूर्वक तेरा प्रसव हो, इत्यादि इन मन्त्रों का तात्पर्य है॥

वाराह गृह्यसूत्र के कुछ प्रमाण

वाराह गृह्यसूत्र ख. १५ सू. १०-११ में यह विधान है कि 'उपस्तरणाभिधारैः' सम्पातं तावच्छिन्नैर्जुहुतः।

अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। स इमां देवो अर्यमा प्रे तो मुञ्चतु मामुतः स्वाहा॥ इयं नार्युपब्रूते

लाजानावपन्तिका । दीर्घायुरस्तु मे पतिरेधन्तां ज्ञातयो मम इति ॥ ११

वाराहगृह्य सूत्र (मथुरापुर संस्करण) पृ० ४६ पर विधान है कि:—

तस्य स्वस्ति वाचयित्वा समाना व आकूतानीति सह जपन्ति

इस की हिन्दी टीका में ठाकुर उदय नारायण सिंह ने ठीक ही लिखा है : —

कि तब फिर ब्राह्मण सहित तीनों समाना व आकूतिः इस मन्त्र को साथ ही पढ़ें । (पृ० ४६)

जैमिनीय गृह्यसूत्रके प्रमाण

जैमिनीय गृह्यसूत्र १ । २१ में ध्रुवदर्शन के समय वधू के लिये निम्न वाक्य बोलने का विधान है ध्रुवोऽसि ध्रुवाहं पति कुले भूयासम् अमुष्येति पतिनाम गृह्णीयात् असाविन्त्यात्मनः ।

अर्थात् तू ध्रुव है मैं भी अपने पतिके घर में ध्रुवा (स्थिरा—कर्तव्यपालन में दृढ़ा) होकर रहूँ और पतिदेव के सौभाग्य को बढ़ाने वाली बनूं । यहां पति का और अपना नाम लेवे ।

इस विधि से पूर्व यह विधि इसी सूत्र में दी है कि:—

प्रेचकाननु मन्त्रयते सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन ॥

अर्थात्—वर यज्ञ मण्डप में उपस्थित दर्शकों को इस मन्त्र द्वारा वधू को देखने के लिये निमन्त्रित करता है कि यह वधू उत्तम मङ्गल युक्ता शुभ लक्षण सम्पन्ना है। आप सब आएं और इसे देखें। इसे सौभाग्य का आशीर्वाद देकर ही घर जाएं उससे पूर्व नहीं।

इस विधि तथा वधू के वर का नाम लेने और मन्त्रोच्चारण के विधान से श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री के इस कथन का स्पष्ट निराकरण हो जाता है कि विवाह के समय वधू अवगुण्ठित (पर्दे में) होती है इस लिये उस के मन्त्रों का उच्चारणादि वर या पुरोहित कर दिया करता है। ध्रुवाहं पतिकुले भूयासं भूयासं सौभाग्यदाहं श्रीमते अर्थात मैं पति कुल में दृढ़ा होकर आप (पति देव के— यहां नाम लेने का विधान है) के सौभाग्य का कारण बनूं। इसे स्वयं पति कैसे उच्चारण कर सकते हैं यह निष्पक्षपात विद्वान् ही विचार कर सकते हैं। यदि किसी जगह कोई ऐसा कर देते हैं तो वह विधि विरुद्ध होने के कारण सर्वथा अमान्य तथा उपहास जनक है। वेदों, ब्राह्मणों, श्रौत सूत्रों तथा गृह्यसूत्रों में कहीं स्त्रियों के लिये पर्दा करने का विधान नहीं है।

ध्रुवदर्शन के साथ साथ वधू को अरुन्धती दर्शन भी कराया जाता है उस समय जैमिनीय गृह्यसूत्र के अनुसार वधू निम्न वाक्य का उच्चारण करती है.—

अरुन्धत्यसि रुद्धाहं पत्या भूयासम् अमुनेति पतिनाम गृह्णीयादसावित्यात्मन: अर्थात् मैं इन पतिदेवके साथ (जिनका नाम यहां लेना चाहिये) सदा बँधी रहूं। १। २२ में पूषात्वेतो नयतु......गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदासि ॥ तथा 'इह प्रिय प्रजया ते समृद्ध्यताम् अस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि । एना पत्या तन्वं संसृजस्वाथा जिव्री विदथमावदासि ।" इन मन्त्रों के पति गृह की ओर प्रस्थान के समय उच्चारण का विधान है। (देखो जैमिनीय गृह्यसूत्रम् डा० कैलण्ड द्वारा सम्पादित मोतीलाल बनारसी दास लाहौर द्वारा प्रकाशित सन् १६२२ पृ० २२)

इन मन्त्रों की व्याख्या करके पहले दिखाया जा चुका है कि इनमें स्त्रियों के न केवल स्वयं यज्ञादि करने बल्कि उनका उपदेश करने वा कराने का विधान है। ऐसे ही विधान अन्य-गृह्यसूत्रों में भी पाये जाते हैं जिन के वचनों को यहां विस्तार भय से नहीं उद्धृत किया जा सकता। जो वचन अनेक गृह्यसूत्रों से यहां उद्धृत किये गये हैं उनसे ही निष्पक्षपात विद्वान् इस निश्चय पर पहुंचे बिना न रहेंगे कि इनमें स्त्रियों के वेदमन्त्रों के अर्थज्ञान पूर्वक शुद्ध उच्चारण करने, वेद पढ़ने पढ़ाने तथा यज्ञ करने कराने का स्पष्ट विधान है।

चतुर्थ अध्याय
स्मृति वचन विमर्श

प्रायः पौराणिक भाइयों का यह विचार है कि मनुस्मृति और अन्य धर्म शास्त्रों में स्त्रियों के वेद पढ़ने तथा यज्ञोपवीतादि धारण का निषेध है, अतः स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार देना उचित नहीं है। वर्तमान स्मृतियों में इस विषयक जो वचन पाये जाते हैं उनका विमर्श करने से पूर्व इस बात को स्पष्ट कर देना उचित प्रतीत होता है कि धर्म के विषय में स्मृतियों की प्रामाणिकता कहां तक है। इस विषय का स्पष्ट ज्ञान किसी भी विवादास्पद विषय के निर्णय के लिये आवश्यक है।

श्रुति और स्मृति

इस विषय में सब आस्तिक आर्य (हिन्दू) एक मत हैं कि वेद ही धर्म के विषय में सबसे मुख्य प्रमाण हैं। वेद के विरुद्ध वचन चाहे जिस किसी ग्रन्थ में पाये जाएं वे उस अंश तक अमान्य ठहरते हैं।

मनु स्मृति में जिसका धर्म शास्त्रों में सबसे उच्च स्थान माना जाता है स्वयं स्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है कि:—

'धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः' ॥ (मनु २।१३) अर्थात् जो धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहते

हैं उनके लिये सबसे बड़ा प्रमाण (स्वतः प्रमाण) वेद ही है। इसकी व्याख्या में सब भाष्यकारों ने यह स्पष्ट लिखा है कि जहां श्रुति और स्मृति का विरोध हो वहां स्मृति की बात अप्रामाणिक मानी जानी चाहिये। उदाहरणार्थ श्रीकुल्लूक भट्ट ने इस पर लिखा है कि:—

धर्मं च ज्ञातुमिच्छतां प्रकृष्टं प्रमाणं श्रुतिः। प्रकर्षबोधनेन च श्रुतिस्मृतिविरोधे स्मृत्यर्थो नादरणीय इति भावः। अतएव जाबालः—

श्रुतिस्मृतिविरोधे तु, श्रुतिरेव गरीयसी।
अविरोधे सदाकार्यं स्मार्तं वैदिकवत्सदा॥
भविष्यपुराणेऽप्युक्तम्:—
श्रुत्या सह विरोधे तु बाध्यते विषयं विना॥

जैमिनिरप्याह 'विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्॥ श्रुति विरोधे स्मृतिवाक्यमनपेक्ष्यम् अप्रमाणम् अनादरणीयम्। असति विरोधे मूलवेदानुमानमित्यर्थः॥

(मनु स्मृति कुल्लूक भट्ट टीका चौखम्भा संस्कृत सीरीज् बनारस १९६२ पृ० २८-२९) अर्थात् धर्म को जो जानना चाहते हैं उनके लिये वेद ही परम प्रमाण हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि जहां श्रुति और स्मृति का विरोध हो वहां स्मृति का वाक्य अमान्य होता है। इस विषय में जाबाल ऋषि ने कहा है कि श्रुति

और स्मृति के विरोध में श्रुति (वेद) का वचन ही प्रामाणिक होता है।

जैमिनि मुनि ने भी मीमांसा दर्शन में इसी बात को कहा है कि श्रुति वचन से विरोध होने पर स्मृति का वचन अप्रमाण और अमान्य होता है। भविष्यपुराण में इसी सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। भाष्यकार गोविन्द-राज ने भी ऐसा ही लिखा है 'श्रुतिस्मृत्यादिविरोधे सति तत्त्वं ज्ञातुमिच्छतां स्मृत्यादीनां मध्यात् श्रुतिः प्रकृष्टं प्रमाणम् अतश्च श्रुतिविरोधे स्मृत्यविरोधः'। अर्थात् श्रुति और स्मृति का विरोध हो तो वेद की बात ही प्रामाणिक होती है स्मृति की नहीं। भाष्यकार नारायण ने लिखा है 'तेषां च परमं प्रमाणं श्रुति-रेव अतः श्रुतिमूलकतयैव स्मृतेरप्यादरणीयतेत्यर्थः ॥ अर्थात् धर्म जिज्ञासुओं के लिए वेद ही परम प्रमाण है। स्मृति की भी आदरणीयता वा मान्यता वेदानुकूल होने से है अन्यथा नहीं।

भाष्यकार नन्दन ने लिखा है "प्रमाणेषु बलाबलजिज्ञा-सायाम् उत्तरार्थं श्रौतस्मार्तसम्पाते श्रौतोऽनुष्ठेय इत्यर्थः ॥ (मनु टीकासंग्रहः जूलियस जौली P.M.P. सम्पादितः, कलकत्ता पृ०८१-८२) अर्थात् प्रमाणों में बलाबल का निश्चय करने के लिये कहा है कि जहां कहीं श्रुति और स्मृति के वचनों का पर-स्पर विरोध दिखाई दे तो वहां वेदोक्त धर्म का ही अनुष्ठान करना चाहिये।

याज्ञिक देवण भट्टोपाध्याय रचित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "स्मृति चन्द्रिका" में भी इसी सिद्धान्त को अनेक प्रमाण उद्धृत करके बताया गया है कि "श्रुतिस्मृत्यो र्विरोधे स्मृते र्बाधएव"

यथाह लौगाक्षिः श्रुति स्मृत्योर्विरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी। अविरोधे सदा कार्यं, स्मार्तं वैदिकवत् सदा॥

(स्मृति चन्द्रिका मैसूर सरकार द्वारा प्रकाशित)

अर्थात् श्रुति और स्मृति में विरोध हो तो स्मृति का वचन अमान्य हो जाता है जैसे कि लौगाक्षि आचार्य ने कहा है कि जहां श्रुति-स्मृति का विरोध हो वहां श्रुति (वेद) का वचन ही प्रामाणिक होता है। जहां वेद के वचन से कहीं विरोध न हो वहां स्मृति के वचन को भी मान्य समझना चाहिये।

वर्तमान मनुस्मृति के १२ वें अध्याय के निम्न श्लोकों में वेद की अपौरुषेयता और स्वतः प्रामाण्य का प्रतिपादन करते हुए उसके विरुद्ध स्मृति आदि ग्रन्थों में पाये जाने वाले वचनों को निष्फल, अन्धकार में ले जाने वाले असत्य और आधुनिक अतएव सर्वथा अप्रमाण बताया गया है यथा:—

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अशक्यं चाप्रमेयं च, वेद शास्त्रमिति स्थितिः॥९४॥

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥९५॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च॥९६॥

अर्थात् अनुभवी पितरों, दूसरे सत्यनिष्ठ विद्वानों और साधारण मनुष्यों सब के लिये वेद ही सनातन चक्षु (मार्ग दर्शक) है। वह अपौरुषेय (अशक्यं च वेदशास्त्रं कर्तुम् अनेना-पौरुषेयतोक्ता इति कुल्लूकः) और अन्य प्रमाणों पर आश्रित नहीं है यह निश्चित सिद्धान्त है।

जो स्मृतियां या उनके वचन वेद विरुद्ध हैं तथा अन्य जो दार्शनिक विचार वेद के प्रतिकूल हैं वे सब निष्फल और अन्धकार में ले जाने वाले हैं। वे आधुनिक होने से निष्फल और असत्य होते हैं।

इन श्लोकों से यह स्पष्ट है कि यदि वर्तमान मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियों में वेद के विरुद्ध कोई वचन पाये जाएं तो वे कभी माननीय नहीं हो सकते। ऐसे वचनों को अप्रामाणिक और प्रक्षिप्त समझना चाहिये क्योंकि वस्तुतः मनु जी जैसे विद्वान् वेद विरुद्ध और प्रमत्तवत् परस्पर विरुद्ध वचनों को (जैसे कि मांस भक्षण, जन्मानुसार वर्णव्यवस्था, पशुयज्ञ और स्त्रियों की स्थिति आदि विषयक वर्तमान मनुस्मृति और अन्य ग्रन्थों में पाये जाते हैं) नहीं लिख सकते थे। विस्तार भय से हम इस विषयक स्पष्ट उदाहरणों को उद्धृत करना यहां आवश्यक नहीं समझते किन्तु महाभारत तात्पर्य निर्णय अ० २ में पाये जाने वाले सुप्रसिद्ध आचार्य स्वा० आनन्दतीर्थ (श्री मध्वाचार्य) के इन वचनों का उल्लेख कर देना पर्याप्त समझते हैं कि:—

"क्वचिद् ग्रन्थान् प्रक्षिपन्ति, क्वचिदन्तरितानपि ।
कुर्युः क्वचिच्च व्यत्यासं, प्रमादात्क्वचिदन्यथा ॥
अनुत्सन्ना अपि ग्रन्थाः, व्याकुला इति सर्वशः ।
उत्सन्नाः प्रायशः सर्वे, कोट्यंशोऽपि न वर्तते ॥

जिन का तात्पर्य यह है कि प्राचीन ग्रन्थों में लोग कहीं प्रक्षेप करते हैं, कहीं वाक्यों को हटा देते हैं, कहीं प्रमाद से और कहीं जान बूझ कर अन्तर कर देते हैं। इस प्रकार जो ग्रन्थ नष्ट नहीं हुए वे भी व्याकुल वा अस्तव्यस्त (गड़ बड़ से) हो गये हैं। बहुत अधिक संख्या ऐसे ग्रन्थों की है जो नष्ट हो चुके हैं। अब पूर्व विद्यमान ग्रन्थों का करोड़वां अंश भी नहीं है।

इस लिये यदि वर्तमान मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियों में कोई ऐसे वचन पाये जाते हैं जो स्त्रियों के वेदाध्ययन, यज्ञ करने कराने अथवा यज्ञोपवीत धारणादि का निषेध करते हैं तो वे वेद विरुद्ध होने के कारण सर्वथा अमान्य और त्याज्य हैं।

मनुस्मृति के कुछ प्रमाण

मनुस्मृति के स्त्रियों के वेदाध्ययन तथा वैदिक कर्म काण्ड में भाग लेने आदि विषयक श्लोकों पर विचार करने से पूर्व निम्न लिखित २,३ मौलिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए।

(१) यथैवात्मा तथा पुत्रः, पुत्रेण दुहिता समा ॥
मनु. ९।१३०

"आत्मस्थानीयः पुत्रः 'आत्मा वै पुत्र नामासि' इति मन्त्रलिङ्गात् । तत्समा च दुहिता तस्या अप्यङ्गेभ्यः उत्पादनात्" (कुल्लूकः)

अर्थात् पुत्र अपने आत्मा के समान होता है जैसे कि 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इत्यादि वाक्यों में कहा गया है। कन्या भी पुत्र के ही समान होती है क्योंकि उस की उत्पत्ति भी उसी प्रकार माता के अङ्गों से होती है।

इस मौलिक सिद्धान्त का ध्यान रखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेदाध्ययन, यज्ञ करना कराना आदि पुत्रों के लिये जैसे विहित है वैसे ही कन्याओं के लिये भी है।

(२) मनु. ९।४५ में एक दूसरे सिद्धान्त का उत्तमता से प्रतिपादन है कि:—

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद् यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥

अर्थात् पुरुष अकेला नहीं होता, किन्तु स्वयम्, पत्नी और सन्तान मिल कर पुरुष बनता है जैसे कि वाजसनेय (शतपथ) ब्राह्मण में कहा है 'अर्धो ह वा एष आत्मनस्तस्माद् यज्जायां न विन्दते नैतावत् प्रजायते असर्वो हि तावत्

भवति अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ प्रजायते तर्हि सर्वो भवति तथा चैतद् वेदविदो विप्रा वदन्ति 'यो भर्ता सैव भार्या स्मृता" (कुल्लूकः) अर्थात् पत्नी पुरुष का आधा अङ्ग है। इस लिये जब तक पुरुष स्त्री को नहीं पाता तब तक उस की सन्तान नहीं होती और वह अधूरा रह जाता है। जब पत्नी को प्राप्त करके वह सन्तानोत्पादन करता है तब वह पूरा बनता है इस लिये वेद जानने वाले विद्वानों ने कहा है कि जो—भर्ता (पति) है वही भार्या (पत्नी) है उन में अन्तर नहीं।

इस सिद्धान्तानुसार भी पुरुषों के वेदाध्ययन अध्यापन, यज्ञ करना कराना आदि कर्तव्य पुरुषों के समान उनकी पत्नियों के भी हैं।

मनुस्मृति ११-३६ में एक बड़ा महत्त्वपूर्ण श्लोक आता है जिसमें बतलाया गया है कि:—

'न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य, नार्त्तो नासंस्कृतस्तथा ॥

अर्थात् कन्या, युवति, थोड़ी विद्यावाला पुरुष, मूर्ख, रोगी और उपनयनादि संस्कार रहित पुरुष ये अग्नि होत्रके होता कराने वाले) न बनें क्योंकि:—

तस्माद् वैतानकुशलो होता स्याद् वेदपारग ॥

मनु० ६ । ३७

अर्थात् श्रौतकर्म में प्रवीण, वेदों के जानने वाले व्यक्ति को ही होता बनाना चाहिये। इसमें अग्नि होत्रके कराने का निषेध भी कन्या और युवति के लिये है अर्थापत्ति से स्पष्ट सिद्ध होता है कि वृद्ध स्त्रियां (आयु वा ज्ञानकी दृष्टि से) न केवल हवन कर सकती हैं बल्कि करा सकती हैं। उनके लिये कोई निषेध नहीं है। स्त्री मात्र के लिये निषेध होता तो 'न वै कन्या न युवतिः' पृथक् लिखने की आवश्यकता न थी। यह श्लोक मनु महाराज के वास्तविक तात्पर्य को समझने के लिये जो 'अथ जिर्विर्विदथमावदासि' (अथर्व १४।१।२१) तथा 'अथ जित्री विदथमावदाथः। (ऋ० १०।८५।२७) के सर्वथा अनुकूल हैं जहां स्त्रियों के आयु अथवा ज्ञान वृद्धा हो कर यज्ञादि विषयक उपदेश का प्रतिपादन है अत्यावश्यक है। श्री पंडित दीनानाथ जी शास्त्री इस पर बड़े तिलमिलाए हैं किन्तु यह स्पष्ट है कि उनसे इसका कोई उत्तर नहीं बन पड़ा। आपने 'सिद्धान्त' के ७ मई १९४६ के अङ्क में लिखा है कि 'न वै कन्या न युवतिः' (मनु० ११। ३६) इस वचन में वृद्धा स्त्री का होतृ कर्म मनु को कैसे विवक्षित हो सकता है जब कि उसके मत में स्त्री मात्र को अधिकार नहीं। तो क्या आप फिर वृद्धा को उपनयन तथा अध्ययन कराओगे तब फिर कल्याणी देवी को अभी रोकिये। उसकी वृद्धा होने तक प्रतीक्षा कीजिये फिर देखा जयगा। आप कल्याणी को वा उसके पिता को नरक में न

भिजवाइये। वे आपके सहारे रहें। आप से ऐसे लेख लिखवाएं और आप उनको नरक में भिजवाएं यह युक्त नहीं।(पृष्ट ३०)

मैं निष्पक्षपात विचारशील विद्वानों से पूछता हूँ कि क्या यह व्यङ्ग पूर्ण भाषा और शैली विद्वानों को शोभा देती है जिसका पं॰ दीनानाथ जी शास्त्री ने अनेक स्थानों में अवलम्बन किया है ? स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक कर्म काण्ड में अधिकार का प्रश्न हमारे लिये सिद्धान्त का प्रश्न है उसे वैयक्तिक समझकर ऐसे ताने मारना पं० दीनानाथ जी जैसे विद्वानों को शोभा नहीं देता और उन के पक्ष की दुर्बलता को सूचित करता है। वेदाध्ययन तथा यज्ञादि विषयक प्रक्रिया के ज्ञान के लिये ब्रह्मचर्यकाल सब से अधिक उपयुक्त है पर यज्ञादि करवाने और वेद पढ़ाने के लिये बहुत अभ्यास और अनुभव की अपेक्षा है इस लिये कन्या और युवति उस को नहीं करा सकतीं पर ज्ञान वृद्धा ही करा सकती हैं जैसे कि मनुस्मृति में कहा है 'यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः' अर्थात् जो युवावस्था में होते हुए भी विशेष विद्वान् है उसको विद्वान वृद्ध ही मानते हैं। इस लिये शास्त्री जी के वृद्धावस्था तक श्रीमती कल्याणी देवी की प्रतीक्षा कराने विषयक ताने व्यर्थ और निस्सार हैं। श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री तथा अन्य पौराणिक विद्वान मनुस्मृति के निम्न लिखित २ श्लोकों को

स्त्रियों का वेदाध्ययन और उपनयनादि में अनधिकार सूचित करने के लिये प्राय: प्रस्तुत करते हैं अत: उनका इस प्रकरण में विमर्श आवश्यक है। वे श्लोक निम्न लिखित हैं:—

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः ।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम् ॥२।६६
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासः, गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥

मनु. २।६७

इसका कुल्लूक भट्ट ने यह अर्थ किया है कि इयम् आवृत् अयं जातकर्मादिक्रियाकलापः समग्र उक्तकालक्रमेण शरीरसंस्कारार्थं स्त्रीणाम् अमन्त्रकः कार्यः ॥ 'विवाह विधिरेव स्त्रीणां वैदिकः संस्कारः उपनयनाख्यो मन्वा-दिभिः स्मृतः। पतिसेवैव गुरुकुले वासो वेदाध्ययन रूपः। गृहकृत्यमेव सायं प्रातः समिद्धोमरूपोऽग्निपरिचर्या । तस्माद् विवाहादेरुपनयनस्थाने विधानादुपनयनादे-र्निवृत्तिरिति ॥"

अर्थात् स्त्रियोंके जातकर्मादि सब संस्कार मन्त्रों के बिना करने चाहिये। स्त्रियों का विवाह संस्कार ही उपनयन स्थानीय वैदिक संस्कार है ऐसा मनु आदि स्मृतिकारों ने

बताया है। पतिसेवा ही गुरुकुल में वास वा वेदाध्ययन रूप है। घर का काम करना ही उन के लिये अग्नि होत्र है। इस लिये उपनयनादि के स्थान में विवाहादि का विधान होने से उन की (उपनयन संस्कार, वेदाध्ययन और अग्नि होत्र की) निवृत्ति हो जाती है।

अन्य कई मनुस्मृति के भाष्यकारों ने भी श्लोकों का ऐसा ही अर्थ माना है। पं० दीनानाथ जी शास्त्री ने भी इसी अर्थ को मान कर इन श्लोकों को अपने पक्ष की सिद्धि के लिये प्रबलतम प्रमाण समझा है। पूर्व प्रतिपादित वेद शास्त्र-सम्मत सिद्धान्तानुसार हमें यह लिखने में कोई संकोच नहीं कि यदि इन श्लोकों का कुल्लूक भट्टादि टीकाकारों का किया हुआ उपयुक्त अर्थ ही ठीक है तो वेद विरुद्ध होने के कारण हम इन्हें अप्रमाण मानते हैं। वेदों के अनुसार कन्याओं के वेदाध्ययनाधिकार, ब्रह्मचर्य के चिन्ह स्वरूप उपनयन और अग्निहोत्र विधान के प्रबल प्रमाण हम प्रथम अध्याय में उद्धृत कर चुके हैं। उन के अतिरिक्त भी
'देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥

(ऋ. १०।१०६।४)

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवः यद् गव्यन्ता द्वा जना समूहसि ॥ (ऋ० अष्टक २ वर्ग १६ म० ३)

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः। देवासो नित्यया शिरा॥ (ऋ. ८।३१।५)

वीति होत्रा कृतद्वसू (ऋ. ८।३१।६)

इत्यादि अनेक वैदिक प्रमाण हैं जिन में स्त्रियों के उपनयन तथा अग्निहोत्रादि करने का स्पष्ट प्रतिपादन है। 'वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवः' इस वेद-मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य ने लिखा है कि हे इन्द्र (त्वा) त्वाम् उद्दिश्य (मिथुनाः) पत्नीसहिता यजमानाः (विततस्रे) यज्ञं वितन्वते त्वम् (स्वर्यन्तौ) स्वर्गं यन्तौ—गन्तुमुद्युक्तौ (द्वा जना) द्वौ जायापती रूपौ जनौ (समूहसि) संयुक्तयोरेवाभिमतं स्वर्गादिकं प्रापयसि अतः पत्नीसहिता अनुतिष्ठन्तीत्यर्थः।"

अर्थात् हे इन्द्र परमेश्वर तेरे उद्देश्य से पत्नी सहित यजमान अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और तू उन दोनों को अभिमत स्वर्ग की प्राप्ति कराता है इसी लिये वे मिल कर यज्ञ करते हैं इत्यादि। इस अर्थ की पुष्टि में सायणाचार्य ने 'जायापती अग्निम् आदधीयाताम्', 'वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत्', 'सुप्रजसस्त्वा वयं सपत्नीरुपसेदिम' इत्यादि प्रमाणों को उद्धृत किया है। यदि मनुस्मृति के

उपर्युक्त श्लोक वस्तुतः स्त्रियों के उपनयन, वेदाध्ययन और अग्निहोत्र का निषेध करते हैं (यद्यपि अनेक विचार शील विद्वान् उन श्लोकों का यह अर्थ नहीं मानते) तो वे वेद विरुद्ध होने के कारण अप्रमाण और परित्याज्य हैं।

ऋग्वेद म. ८ सू. ३१ के 'या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः।' इत्यादि मन्त्रों में भी मिल कर यत्न करने वाले पति पत्नी की प्रशंसा तथा उनको उत्तम यश और सौभाग्य की प्राप्ति का वर्णन श्री सायणाचार्य ने 'अत्र यजने दम्पत्योः स्तुतिः हे देवाः (समनसा) कर्मणि समानमनस्कौ (या) यौ (दम्पती) यज्ञकारिणौ जायापती (सुनुतः) सोमाभिषवं कुरुतः तौ यष्टारौ सर्वदा अन्नसहितौ तिष्ठाताम्-यज्ञेन तयोः पुत्रादिकं धनमायुश्च संभवति (वीतिहोत्रा) वीतिः प्रियकरो होत्रा यज्ञो ययोस्तौ अनेन यज्ञेन तयोः सुखादिकं सम्भवति" इत्यादि शब्दों में किया है। वेद के नियमपूर्वक अध्ययन के बिना यज्ञों में सहयोग देना, यज्ञों में विहित विविध क्रियाओं का करना असम्भव है।

छान्दोग्योपनिषत् ३।१।२० में ठीक ही कहा है कि 'नाना तु विद्या च अविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति।"

अर्थात् जो कार्य (विद्या) ज्ञान और श्रद्धापूर्वक किया जाता है वही अधिक शक्तिशाली वा प्रभावजनक होता है। यज्ञों को इस प्रकार सफल बनाने के लिये वेद मन्त्रों का (जिन में से बहुत से स्त्रियों को सम्बोधित करके कहे गये हैं और जिन में से बहुत से उन के लिये स्वयम् उच्चारणीय हैं) अर्थज्ञान आवश्यक है। पं० दीनानाथ जी शास्त्री के कथनानुसार स्त्रियों को मूर्ति की तरह यज्ञ में बिठा लेने से काम नहीं चल सकता। इस लिये यदि मनुस्मृति के उपर्युक्त श्लोकों का कुल्लूक भट्टादि सम्मत अर्थ ही ठीक माना जाए तो ऊपर उद्धृत वेद वचनों के विरुद्ध होने के कारण वे श्लोक अमान्य हैं। अनेक विचार-शील विद्वानों का कथन है जैसे कि कर्णाटक भाषा में 'स्त्री संस्कार प्रकाशिका' नामक ग्रन्थ के लेखक श्री रघुनाथ राव अध्यक्ष ब्रह्मविद्या सभा चित्रदुर्ग ने बताया है कि यहां 'अम-न्त्रिका' का अर्थ सर्वथा मन्त्ररहित नहीं किन्तु 'अनुदरी कन्या' की तरह अल्पमन्त्रा करना चाहिये क्योंकि नञ् का प्रयोग

तत्सादृश्यमभावश्च, तदन्यत्वं तदल्पता ।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च, नञर्थाःषट् प्रकीर्तिताः ॥

(शब्द कल्पद्रुम में उद्धृत)

इत्यादि अर्थों में होता है। कन्या संस्कार में मेखलाबन्धनादि विषयक कई मन्त्र छोड़ने पड़ते हैं। अतः अल्पमन्त्रा कहा है। 'वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम्'

का कई विद्वान् यह अर्थ करते हैं कि स्त्रियों की विवाह विषयक विधि वैदिक है पति सेवा, वेदाध्ययनार्थ गुरुओं के पास निवास, घर का कार्य और अग्निहोत्रादि ये स्त्रियों के कर्तव्य हैं। इन विद्वानों का कथन है कि कुल्लूकभट्ट तथा अन्य टीकाकारों ने जो **विवाह विधिरेव वैदिकः संस्कारः, पतिसेवा एव गुरुकुले वासः वेदाध्ययनरूपः,** इत्यादि व्याख्या 'एव' को अपनी तरफ़ से जोड़ कर की है (जो मूल में कहीं नहीं पाया जाता) वह उनकी कपोल कल्पना होने से अमान्य है।

'Vedic Law of Marriage' के लेखक दक्षिण के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्व० श्री महादेव शास्त्री, पं० तुलसीरामजी सामवेद भाष्य कार, पं० आर्यमुनि जी, पं० भीमसेन जी शर्मा आदि विद्वानों ने इन श्लोकों को वेद विरुद्ध होने से अमान्य और प्रक्षिप्त माना है। **'अमन्त्रिका तु कार्येयम्'** (२।६६) और **'वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम्'** (२।६७) ये दोनों श्लोक प्रक्षिप्त हैं यह इस से भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि मनु २।६५ के

केशान्तः षोडशे वर्षे, ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे, वैश्यस्य द्व्यधिके ततः॥

इस श्लोक की मनु २।६८ के

एष प्रोक्तो द्विजातीनाम्, औपनायनिको विधिः॥

इसके साथ सङ्गति मिल जाती है जिस में उपनयन विषयक

प्रसङ्ग का उपसंहार है। बीच के श्लोक सर्वथा अनावश्यक और वेद शास्त्र विरुद्ध हैं।

इस प्रसङ्ग की समाप्ति के पूर्व मनुस्मृति के अनेक संस्करणों में 'अमन्त्रिका तु कार्येयम्' और 'वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम्' के ठीक बाद पाये जाने वाले एक श्लोक का जो वेदानुकूल होने से मान्य है उल्लेख कर देना मैं अत्यावश्यक समझता हूँ जो निम्न लिखित है :—

'अग्नि होत्रस्य शुश्रूषा सन्ध्योपासनमेव च।
कार्यं पत्न्या प्रतिदिनं, बलिकर्म च नैत्यिकम्॥

यह श्लोक 'स्मृतिरत्न' में मनु के नाम से उद्धृत है ऐसा चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस के संवत् १९९२ में प्रकाशित कुल्लूक भट्ट टीका सहित मनुस्मृति के परिशिष्ट पृ० संख्या १ में बताया गया है और उसी संस्करण के पृ० ३८ पर 'वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम्' के बाद थोड़ेसे पाठ भेदसे 'इति कर्म च वैदिकम्' इसे कोष्ठक में उद्धृत किया गया है। इस श्लोक का अर्थ है कि अग्निहोत्र (देवयज्ञ), सन्ध्योपासन (ब्रह्म यज्ञ), और बलि वैश्वदेवयज्ञ ये दैनिक वैदिक यज्ञ पत्नी को प्रतिदिन करने चाहियें। मालूम होता है कि संकुचित विचार वाले स्वार्थी लोगों ने इस वेदानुकूल आशय वाले श्लोक को मनुस्मृति में से पीछे से निकालकर उसके स्थान पर वेद विरुद्ध श्लोक मिला दिये जिनकी ऊपर आलोचना की गई है। स्त्रियों के विवाह

संस्कारको छोड़ कर अन्य संस्कार क्यों मन्त्र रहित हों इस की युक्ति-युक्त आलोचना करते हुए सुप्रसिद्ध सनातन धर्माभिमानी विद्वान श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री ने, "अछूतोद्धार निर्णय" में बड़ा अच्छा लिखा है कि:—

'अब यहां प्रश्न होता है कि स्त्री का विवाह तो क्यों वेद मन्त्रों से करना बताया और अन्यसंस्कार क्यों मन्त्र रहित बधान किये इसका उत्तर तेरी चुप मेरी चुप के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता। गृह्यसूत्रों में विवाह में उच्चारण करने के कन्या के अनेक मन्त्र लिखे हैं। गृह्यसूत्रों ही क्या स्वयं वेद मन्त्रों के अर्थों से यह प्रतीत हो जाता है कि ये कन्या के उच्चारण करने के मन्त्र हैं। इससे विवाह के तो अमन्त्रक बनाने में आधुनिक स्मृति वचन कारकों की दाल नहीं गली परन्तु गर्भाधानादि में स्त्री के उच्चारण के स्पष्ट मन्त्र नहीं हैं अतएव उनको अमन्त्रक लिख मारा। यदि आप पारस्करादि गृह्य सूत्रों को देखेंगे तो उनमें कन्या के भी समस्त संस्कार समन्त्रक ही पाएगे। इसके अतिरिक्त कन्योचित यज्ञोपवीत, वेदारम्भादि का निषेध किया है उनका भी शास्त्रों में विधान पाया जाता है:—

पुरा कल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धन मिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां, सावित्री वाचनं तथा॥

(निर्णय सिन्धु पृ० ४१४)

अर्थात पुराकल्प ग्रन्थों में स्त्रियों को यज्ञोपवीत का विधान कहा गया है। इसी प्रकार वेदाध्ययन और गायत्री उपदेश का भी इनको अधिकार है। यहां हमको स्त्री अधिकार के विषय में अधिक नहीं लिखना है केवल इतना ही कथन अभीष्ट है कि जिस प्रकार स्त्री को सब संस्कारों के समन्त्रक अधिकार शास्त्रों में मिलने पर भी आधुनिक स्मृति कारों ने इनको अमन्त्रक संस्कार करने बताये उसी प्रकार शूद्र को भी अमन्त्रक संस्कार पीछे लिख दिये हैं। ("अछूतोद्धार निर्णय" संम्वत १९८९ पृ० ४८)

यही बात पं० भीमसेन जी शर्मा ने मानवधर्म मीमांसा भूमिका में लिखी है कि:—

जातकर्मादयः संस्काराः कन्यानां मन्त्रपाठविहीनाः कार्याः किमर्थमिदम् ? यदि शरीरस्य संस्कारे मन्त्रपाठोऽपि हेतुस्तर्हि संस्कारार्थं शरीरस्येति कथनं विरुध्यते। यदि कथंचिन्मतं स्यात् स्त्रियः शूद्रवन्निकृष्टा वेदस्य श्रवणाधिकारिण्यो न भवन्ति तर्हि तासां विवाहेऽपि मन्त्रैः संस्कारो न कार्यस्तत्रापि ताः श्रोष्यन्ति। विवाहे तु यदा ताभिर्मन्त्रपाठं कारयितुमाज्ञापयन्ति पुनः श्रवणस्य का कथा। एतेनानुमीयते मन्त्रश्रवणे पाठे वा स्त्रीणां दोषो नास्ति। यदि वेदपाठस्य श्रवणस्य वा स्त्रीणामधिकारो न स्यात् तर्हि वेदेऽपि प्रतिषेध उपलभ्येत स

तु न दृश्यते। यदि कश्चिद् ब्रूयाद् वेदे विधानमपि नोपलभ्यते तर्हि यादृशं विधानं पुरुषार्थमुपलभ्यते तादृशमेव तदर्थमप्यस्ति। यानि कर्माणि वेदादिशास्त्रेषु ब्राह्मणादि-वर्णानां कर्तव्यत्वेनोपदिष्टानि तानि तत्तत्स्त्रीभ्योऽपि तथैव बोध्यानि। स्त्री च पुरुषस्यार्द्धाङ्गी तस्माद् यत्र पुरुषस्याधि-कारस्तत्र तत्र तत् स्त्रिया अपि। यदा च स्त्रीशरीरादेव निर्मितानां बालानामधिकारो भवति हर्ति तदुपादानकारणी-भूतानामधिकारो न स्यादिति पक्षपातः प्रमादो वा किं नास्ति ? याश्च वेदान् शास्त्राणि वा पठितुमशक्तास्तासामधिकारो नास्तीति कश्चिद् वदेत् तर्हि तादृशपुरुषाणामप्यधिकारो नास्ति। स्त्रीभ्योऽधिकारादानात् पुरुषा अपि विद्याबुद्धि-विहीना हीनसंस्काराः स्त्रीवन्नीचप्रकृतय उत्पद्यन्ते। अयमे-वैतद्देशदुर्दशाया महान् हेतुः। पूर्वं यदा विद्या-शिक्षादिप्रापणेन स्त्रीणां संस्कारः क्रियते तदा संस्कृतासु तासु बाला अपि संस्कृताः शुभगुणान्विता जायन्ते। तथा चोक्तं सुश्रुतस्य शारीरे।

"आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥"

आहाराचारचेष्टाश्च विद्याशिक्षानुकूला जायन्ते। तस्माद् स्त्रीभ्यो वेदादिशास्त्राणि पाठ्यानि श्राव्याणि च येन मूले संस्कृते वृक्षस्य संस्कारः स्यात्। इयं भूमिर्हि भूतानां शाश्वती योनिरुच्यते। इति मानववचनेन ज्ञायतेऽन्नस्य पृथिवीव मनुष्याणामुत्पादिका स्त्री। पुरुषशरीरे यावान् रसरुधिरमांसादि धातुसमुदायः स सर्वो बाल्यावस्थायां मातुः शरीरादेवायातः। सा यदि कथमपि निकृष्टास्ति तर्हि बालस्योत्तमत्वे को हेतुः। इत्थं पुरुषवत् स्त्रीणामप्यधिकारे सिद्धे षट्षष्टितमं पद्यम् ('अमन्त्रिका तु कार्येयम्' इत्यादि) प्रक्षिप्तमिति प्रतिभाति। वक्ष्यमाणसप्तषष्टिपद्येन साकं विरोधाच्च। अर्थात् सप्तषष्टितमे पद्ये मनुना स्त्रीणां सर्वं कृत्यं वैदिकमुक्तम्।"

(मानवधर्ममीमांसोपोद्घातः पृ० १३३-१३४)

अर्थात् इस द्वितीयाध्याय का ६६ वां श्लोक (अमन्त्रिका तु-कार्येयम्) भी विचारणीय है। उस में लिखा है कि कन्याओं के जातकर्मादि संस्कार बिना मन्त्र पढ़े करने चाहियें इस पर शङ्का होती है कि ऐसा क्यों करें? यदि शरीर के संस्कार में मन्त्र पाठ भी होता है तो शरीर का संस्कार वा शुद्धि होने के लिये सब क्रिया ज्यों की त्यों करे यह कथन विरुद्ध पड़ता है क्योंकि शुद्धि के लिये उपाय करना कहा जाए और शुद्धि के

इतु मन्त्र पढ़ने का निषेध किया जाए यह परस्पर विरुद्ध है। यदि कदाचित् मानते हों कि शूद्र के तुल्य स्त्रियां नीच हैं इस से उन को वेद के सुनने का अधिकार नहीं तो विवाह में भी उन का मन्त्रों से संस्कार नहीं करना चाहिये क्योंकि वे मन्त्र सुन लेंगी। विवाह में जब स्वयमेव स्त्रियों को मन्त्र बोलने की आज्ञा देते हैं तो सुनने की क्या कथा है? इससे अनुमान होता है कि मन्त्र सुनने वा बोलने में स्त्रियों को दोष नहीं है। यदि वेद पढ़ने व सुनने का स्त्रियों को अधिकार न हो तो वेद में भी निषेध मिलना चाहिये सो नहीं दीखता। यदि कोई कहे कि वेद में स्त्रियों को वेद पढ़ाना चाहिये ऐसा विधान भी नहीं मिलता तो उत्तर यह है कि जैसा विधान पुरुषों को मिलता है वैसा ही स्त्रियों के लिये है अर्थात जैसे कहा गया कि वेद पढ़ना चाहिये तो जिन २ पुरुषों को पढ़ना आवेगा उन २ की स्त्रियों को भी पढ़ाना अवश्य उपयोगी है। जो २ कर्म वेदादि-शास्त्रों में ब्राह्मणादि वर्णों को कर्तव्य मान कर कहे गये हैं वे २ उन २ की स्त्रियों को भी वैसे ही कर्तव्य हैं क्योंकि स्त्री पुरुष की अर्धाङ्गी है। स्त्री पुरुष दोनों मिल कर पूरे हैं एक २ अधूरे हैं इसलिये जहां पुरुष को अधिकार है वहां उसकी स्त्री को भी अवश्य होना चाहिये। जब स्त्री के शरीर से बने हुए बालकों को अधिकार है तो उन बालकों की उपादानकारण-स्वरूप स्त्रियों को अधिकार न माना जाए यह पक्षपात मात्र है। अथवा क्या यह बड़ा प्रमाद नहीं? कदाचित् कहो कि जो

स्त्रियां वेदादि शास्त्र पढ़ने में असमर्थ हैं उन को अधिकार
नहीं है तो वैसे असमर्थ निर्बुद्धि पुरुषों को भी अधिकार नहीं
है। स्त्रियों को अधिकार न देने से पुरुष भी विद्या बुद्धि रहित
बिगड़े संस्कारों वाले स्त्रियों के तुल्य नीच प्रकृति उत्पन्न होते
हैं। यही इस देश की दुर्दशा का बड़ा हेतु है। पहले जब
विद्या और धर्म नीति की शिक्षादि को प्राप्त करा के स्त्रियों
का शारीरिक वा आत्मिक संस्कार किया जाता है तो उन
शुद्ध संस्कार को प्राप्त हुई स्त्रियों में बालक भी शुद्ध संस्कारी
शुभ गुण सम्पन्न उत्पन्न होते हैं। यही बात सुश्रुत के शारीर-
स्थान में कही भी है कि स्त्री पुरुष जैसे भोजन, छादन, आचरण
और चेष्टा के साथ गर्भाधान समय में संयोग करते हैं उनका
पुत्र भी वैसे आचरण वा चेष्टा वाला होता है। मनुष्य के
आहार, आचरण और चेष्टा विद्या शिक्षा के अनुसार होते
हैं इसलिये स्त्रियों को वेदादि शास्त्र पढ़ाने और सुनाने चाहियें
जिस से मूल के संस्कारयुक्त होने से वृक्ष रूप पुत्रादि संस्कारी
हों।.........इस प्रकार पुरुष के तुल्य स्त्रियों का भी पठन
पाठन में अधिकार सिद्ध होने पर २।६६ (अमन्त्रिका तु
कार्येयम्) श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। तथा आगे कहे
६७ वें श्लोक के साथ विरोध भी है अर्थात् ६७ वें श्लोक में
मनु जी ने स्त्रियों के सब कर्म वैदिक कहे हैं"

(मानव धर्म शास्त्र उपोद्घात भाषा पृ० १३८-१३९)

पं० भीमसेन जी शर्मा के मनुस्मृति के भाष्य के उपोद्-
घात से उपर्युक्त उद्धरण युक्तियुक्त तथा महत्त्व पूर्ण होने के

कारण यहाँ दिये गये हैं जिन पर निष्पक्षपात होकर विद्वानों को विचार करना चाहिये।

'अमन्त्रिका तु कार्येयम्' इस श्लोक को सत्य मानने पर भी दो विषयों पर और विचार करने की आवश्यकता है। प्रश्न यह है कि इस श्लोक के अनुसार क्या कन्याओं वा स्त्रियों के संस्कार में मन्त्र सहित होम (हवन) का भी निषेध है अथवा कुछ क्रियाओं को ही चुप चाप करने से तात्पर्य है। महामहोपाध्याय श्रीमित्र मिश्रने वीर मित्रोदय के संस्कार प्रकाश में जो चौखम्भा संस्कृत ग्रन्थ माला बनारस में छपा है इस विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है:—

"अथ स्त्रीणां जातकर्म। तत्र मनुः—

अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।

इयमावृत्-जातकर्मादिक्रिया। गोभिलोऽपिः—

तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां मन्त्रेण तु होमः इति होमपदं स्वस्तिवाचनादीनामङ्गानामुपलक्षणम्। तेन तान्यपि समन्त्रकाणि भवन्ति। अमन्त्रकत्वस्य यज्ञाथर्वणं वैकाम्या इष्टयस्ता उपांशु कर्तव्याः "इत्युपांशुत्वस्येव" [पू० मी० ३। ८। १६] प्रधानमात्रधर्मत्वात् ततश्चात्र घृतमधु-प्राशनादिमन्त्राणामेव निवृत्तिर्नाङ्गमन्त्राणामिति सिद्धम्।

याज्ञवल्क्योऽपिः—

तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः ॥

(वीर मित्रोदयस्य संस्कार प्रकाशे पृ० १८४)

सारांश यह है कि 'अमन्त्रिका तु कार्येयम्' द्वारा केवल घृत मधु प्राशनादि कुछ मन्त्रों को चुपचाप बोलने का विधान है गोभिल के प्रमाणसे हवन जिसमें स्वस्तिवाचनादि सम्मिलित है मन्त्र सहित ही होता है। याज्ञवल्क्य ने भी कहा है कि ये क्रियाएं स्त्रियों के संस्कार में तूष्णीम्—चुपचाप की जाती हैं, विवाह संस्कार तो मन्त्र सहित होता है।

"स्त्रीणां चूड़ा कर्म" के प्रकरण में भी श्रीमित्र मिश्र ने लिखा है:—

आश्वलायनगृह्येऽपि आवृतैव कुमार्या इति। स्मृतिरूपेणाप्याह स एव 'हुतकृत्यं तु पुंवत्स्यात् स्त्रीणां चूड़ाकृतावपि ॥'

हुतकृत्यं होमः। पुंवत् समन्त्रकः तेन प्रधानमात्रममन्त्रक मित्युक्तं प्राक् ॥

(वीर मित्रोदयस्य संस्कार प्रकाशे पृ० ३१७)

अर्थात् आश्वलायन स्मृति के अनुसार स्त्रियों के चूड़ाकर्म संस्कार में भी हवन मन्त्र सहित ही होता है केवल कुछ प्रधान क्रियाएं चुपचाप कर दी जाती हैं।

यही बात पारस्कर गृह्य के २ य काण्ड हरि हर के भाष्य में कही गई है। हरिहराचार्य लिखते हैं:—

एतानि जातकर्मादिचूड़ाकरणान्तानि कर्माणि कुमार्या अप्यमन्त्रकाणि कार्याणि। तत्र होमस्तु समन्त्रकः। तदुक्तं कारिकायाम्:—

जातकर्मादिकाः स्त्रीणां चूड़ाकर्मान्तिकाः क्रियाः।
तूष्णीं होमे तु मन्त्रः स्यादिति गोभिल भाषितम्॥

होमस्तु समन्त्रक इति प्रयोगपारिजाते।

(पारस्कर गृह्य सूत्रं पञ्चभाष्योपेतम् गुजराती प्रेस बम्बई पृ० १६३-१६४)

अर्थात् ये स्त्रियों के जातकर्म से चूड़ाकर्म पर्यन्त कार्य अमन्त्रक कराने चाहियें किन्तु हवन तो मन्त्र सहित ही होना चाहिये जैसे कि कारिका में कहा है। जातकर्म से चूड़ाकर्म तक स्त्रियों की क्रियाएं चुपचाप की जाती हैं किन्तु हवन तो मन्त्र सहित ही करना चाहिये यह गोभिल का वचन है।

प्रयोग पारिजात में भी लिखा है कि "होमस्तु समन्त्रकः" अर्थात् हवन तो मन्त्र सहित ही किया जाता है।

मनुस्मृति के टीकाकार राघव ने भी 'अमन्त्रिका तु कार्येयम्' इस श्लोक की व्याख्या में लिखा है कि 'आवृत्-जातकर्मादिक्रियाकलापः परिपाटी अमन्त्रिका अत्रोपयुक्ता होमास्तु समन्त्रका एव" (मनु० टीका संग्रहः भाग २ पृ० ११६)

अर्थात् जातकर्मादि संस्कारों की क्रियाएं चुपचाप हों किन्तु इन में प्रयुक्त हवन तो मन्त्रसहित ही होना चाहिये।

इस प्रकार विचार करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'अमन्त्रिका तु कार्येयम्' इस श्लोक को वस्तुतः मनु का वचन मानने पर भी इससे स्त्रियों के संस्कारों में हवनादि मन्त्रों का निषेध नहीं होता। केवल कुछ क्रियाओं को तूष्णीम्—मन में चुप चाप कर लिया जाता है। इसके आधार पर पं० दीनानाथ जी शास्त्री आदि का स्त्रियों को वेदानधिकार सिद्ध करने का प्रयत्न सर्वथा निष्फल है। विवाह संस्कार को तो वे स्वयं भी मन्त्र सहित मानते ही हैं अन्य संस्कारों में भी उपर्युक्त प्रमाणों से हवनादि सब मन्त्र सहित होते हैं फिर वैदिक कर्म काण्डादि में अनधिकार इससे कैसे सिद्ध हुआ? यह तो वही कहावत यहां चरितार्थ हुई कि "भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः॥" अर्थात् लशुन के खाने पर भी बीमारी शान्त न हुई। विद्वान् इस पर गम्भीरता से विचार करें।

दूसरा प्रश्न यह है कि 'अमन्त्रिका तु कार्येयम्' इस श्लोक को मनु जी का वचन मानने पर उस में उपनयन संस्कार का भी समावेश है वा नहीं। इस विषय में महामहोपाध्याय श्रीमित्र मिश्र कृत वीरमित्रोदय के संस्कार प्रकाश और विद्वद्वर राम कृष्ण विरचित 'संस्कार गणपति' नामक ग्रन्थ में (जिस में पारस्कर गृह्यसूत्र की विस्तृत व्याख्या है) विशेष विमर्श किया

गया है जिसे उपयोगी होने के कारण यहां उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है।

महामहोपाध्याय मित्र मिश्र अपने वीरमित्रोदय के उपनयन संस्कार प्रकाश में लिखते हैं:—

अथ स्त्र्युपनयनम् तत्र हारीतः—

द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनाम् उपनयनम् अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्येति। सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्य इति। यमोऽपि:—

पुरा कल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां, सावित्री वाचन तथा॥
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः।
स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते।
वर्जयेदजिनं चीरं, जटाधारणमेव च ॥ इति।

पुराकल्पेऽर्थवादविशेषे। तत्रार्थवादिकविधेः सार्वकालिकत्वे शिष्टस्मृतिविरोधदर्शनात् कल्पान्तर इति स्मृतिचन्द्रिकाकारः। पित्रादिरेवैनामध्यापयेन्नापर इत्यन्वयः।

स्तुरपिः—

प्राङ् नाभिवर्धनात्पुंस इत्युपक्रम्य नामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनचूड़ोपनयनकेशान्तान् पुरुषसंस्कारान् विधायान्ते पूर्वोक्तसंस्कारेतिकर्तव्यतां स्त्रीष्वतिदिशति।

अमन्त्रिका तु कार्येयं, स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य, यथाकालं यथाक्रमम्॥

अत्रेयमिति सर्वनाम्ना बुद्धिस्थपरामर्शात् सप्तानां च संस्काराणां बुद्धिस्थतया उपनयनस्यापि तदन्तर्गतत्वेनातिदेशात् स्त्रीणामप्यमन्त्रकमुपनयनं सिद्ध्यति। ये तु चूड़ान्तानामेव इदमा परामर्शो नोपनयनकेशान्तयोरिति मन्यन्ते तेषामसम्बन्धिव्यवधानेन विच्छिन्नबुद्धीनां परामर्शं वदतां कथमिव लज्जा नाननमानमयति?

अथ 'तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणाम्' इति याज्ञवल्क्यैकवाक्यतया चूड़ान्तानामेव परामर्शो नोपनयनादीनामिति वाच्यम्। तर्हि यमहारीतैकवाक्यतया उपनयनपरामर्शोऽपि कथं नाङ्गीक्रियत इति। अथ "वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।" इत्यग्रेतनवाक्ये विवाहस्योपनयन-

स्थानापत्तिविधानान्यथानुपपत्त्या इदमः संकोच इति न वाच्यम् । तस्य स्मृत्यन्तराभिहितोपनयनाभावपक्षे विवाहस्य तत्स्थानापत्तिविधायकत्वेनापि चरितार्थत्वात् । तस्मान्मनुवाक्ये नेदमः संकोच इति । किं चाश्वलायनेनापि 'मुखमग्रे ब्राह्मणोऽनुलिम्पेतेति' समावर्तनीयमनुलेपनं प्रस्तुत्य 'उपस्थं स्त्री' त्यनेन स्त्रीणामनुलेपनं विदधता तासामप्युपनयनमुक्तं भवति उपनयनपूर्वकत्वात् समावर्तनस्य ।

अत एव संन्यासब्रह्मजिज्ञासादिकमपि उपनीतानामेव स्त्रीणां घटते । आश्रमसमुच्चयविकल्पयोरुपनयनपूर्वकत्वात् । तदय निर्गलितोऽर्थः ब्रह्मवादिनीनां गर्भाष्टमादौ मन्त्रवत् तूष्णीं चोपनयनम् । ततो वेदाध्ययनं प्राग्रजोदर्शनात् समावर्तनम् । सद्योवधूनां तूक्तविवाहकाल एवोपनयनं सद्य एव समावर्तनं सद्य एव विवाह इति ।"

(वीरमित्रोदये संस्कार प्रकाशः खण्ड ५ विद्याविलास प्रेस बनारस पृ० ४०२-४०५)

सारांश यह है कि स्त्रियों के उपनयन के विषय में हारीत ने लिखा है कि दो प्रकार की स्त्रियां होती हैं ब्रह्मवादिनी और

सद्योवधू। ब्रह्मवादिनियों का उपनयन, वेदाध्ययन, घर में भिक्षादि नियम होते हैं। सद्योवधुओं का विवाह काल के उपस्थित होने पर उपनयन करके विवाह कर देना चाहिये।

यम ने भी कहा है कि पुरा कल्प में कुमारियों का वेदाध्ययन, अध्यापन, गायत्री जप करना कराना इत्यादि विधान किया गया है। पुराकल्प का अर्थवाद-विशेष यह अर्थ है यद्यपि स्मृतिचन्द्रिकाकार ने अर्थवाद की विधि सर्व कालीन होती है आधुनिक स्मृति तथा आचार के साथ उस का विरोध देखकर 'कल्पान्तर' में ऐसा उस का अर्थ कर दिया है। मनु ने जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा कर्म, उपनयन, केशान्त इन पुरुष के संस्कारों का विधान करके इन का स्त्रियों के लिये भी 'अमन्त्रिका तु कार्येयम्' इस श्लोक द्वारा विधान किया है। यहां 'इयम्' पद से पूर्वोक्त सात संस्कारों का ग्रहण है जिन में उपनयन भी है और इस प्रकार स्त्रियों का भी अमन्त्रक उपनयन सिद्ध होता है। जो 'इयम्' से चूड़ाकर्म पर्यन्त संस्कारों का ग्रहण है उपनयन और केशान्त का नहीं ऐसा कहते हैं क्यों नहीं उन भ्रष्ट बुद्धि वाले लोगों को कुछ भी लज्जा आती? यदि कहो कि याज्ञवल्क्य के वचन के साथ एकवाक्यता वा समन्वय करने के लिये यहां हम चूड़ाकर्म तक संस्कारों का ही ग्रहण करेंगे उपनयनादि का नहीं तो यम और हारीत के वाक्यों के साथ एकवाक्यता वा समन्वय करने के लिये क्यों न उपनयन को भी स्वीकार किया जाए?

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणाम्" इस अगले श्लोक के साथ सङ्गति लगाने के लिये 'इयम्' के अर्थ में संकोच करना चाहिये ऐसा कहना भी ठीक नहीं क्योंकि उस का ऐसा अभिप्राय लिया जा सकता है कि जिस किसी स्मृत्यन्तर का उपनयनाभाव का पक्ष हो उस की दृष्टि में विवाह उपनयन-स्थानीय है इस लिये मनु के वाक्य में 'इयम्' में चूड़ाकर्म तक संकोच नहीं, उपनयन का भी उस से ग्रहण है।

आश्वलायन ने भी स्त्रियों के समावर्तन संस्कार का 'उपस्थं स्त्री' इत्यादि विधि द्वारा निर्देश करते हुए उपनयन का कथन किया है क्योंकि समावर्तन उपनयन पूर्वक ही हो सकता है। इसी लिये संन्यास ब्रह्मजिज्ञासा आदि, उपनीत स्त्रियों के ही विषय में चरितार्थ होता है। इस लिये सार यह है कि ब्रह्मवादिनियों का गर्भ से ८ वें वर्ष में मन्त्र पूर्वक और और कुछ चुपचाप उपनयन संस्कार उसके पश्चात् वेदाध्ययन तथा रजो दर्शन से पूर्व समावर्तन होता है। सद्योवधुओं का तो विवाह के समय में ही उपनयन, शीघ्र ही समावर्तन और विवाह होता है। इत्यादि

'संस्कार गणपति" का लेख

श्री रामकृष्ण भट्ट ने अपने 'संस्कार गणपति' नामक पारस्कर गृह्य सूत्र की विस्तृत व्याख्यात्मक ग्रन्थ में 'शूद्रस्योपनयन' प्रकरण में लिखा है:—

अथ शूद्राणामुपनयनम्ः—

आपस्तम्बः—शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम्।
मद्यपान रहितानामिति कल्पकारः।

अथ स्त्र्युपनयनम्। यमः—

पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः।
स्वगृहे चैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते॥
वर्जयेदजिन चीरं, जटा धारण मेव च॥ इति।

तच्चोपनयनममन्त्रकम्।

तथा च मिताक्षरायां याज्ञवल्क्यः—

तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां, विवाहस्तु समन्त्रकः॥

(संस्कार गणपति पृ० ६४२)

यहां शूद्रों के उपनयन के विषय में आपस्तम्ब के वचन को उद्धृत करके स्त्रियों के उपनयन के विषय में यम के वचनों का उल्लेख किया गया है यद्यपि याज्ञवल्क्य के वचन के साथ उस को मिलाने के लिये उसे अमन्त्रक कह दिया है। जैसे कि 'अमन्त्रिका तु कार्येयम्' पर विचार करते हुए लिखा जा चुका है। अमन्त्रिका से तात्पर्य केवल कुछ प्रधान विधियों के ही चुप चाप करने से होता है शेष हवनादि की सब क्रियाएं तो

मन्त्र सहित ही होती हैं। श्री रामकृष्ण भट्ट ने 'संस्कार गणपति' के स्त्रियों के चूड़ाकर्म प्रकरण में इसी बात को कहा है:—

" स्मृतिरूपेणाप्याह स एव हुतकृत्यं च पुंवत्स्यात् स्त्रीणां चूड़ाकृतावपि। हुतकृत्यं होमः पुंवत् समन्त्रकः। तेन प्रधानमात्रममन्त्रकमित्युक्तं प्राक् ॥

(संस्कार गणपति पृ० ६०६-६१०)

इस प्रकार 'अमन्त्रिका कार्येयम्' इत्यादि श्लोकों को मनु का यथार्थ वचन मानने पर भी उससे पं० दीनानाथ जी शास्त्री जैसे कट्टरपन्थियों का तात्पर्य सिद्ध नहीं होता।

वर्तमान मनुस्मृति के नवम अध्याय में पाये जाने वाले

नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मे व्यवस्थितिः।
निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः॥ ९।१८

इस श्लोक को पं० दीनानाथ जी ने कई स्थानों पर बड़े हर्ष के साथ उद्धृत किया है जिस में कहा है कि स्त्रियों की क्रिया मन्त्रों से नहीं होती यह धर्म की व्यवस्था है। स्त्रियों की इन्द्रियां नहीं होतीं, वे मन्त्ररहिता हैं और असत्य की तरह अशुभा वा असत्य स्वरूपिणी हैं (अनृतवदशुभाः स्त्रिय इति शास्त्र-मर्यादा—कुल्लूकः) यह शास्त्र मर्यादा है।

इस प्रकार के श्लोक वैदिक भावना तथा परस्पर विरोध के कारण सर्वथा अमान्य हैं। विचारशील पाठक इस परिणाम पर पहुंचे विना न रहेंगे कि:—

नैता रूपं परीक्षन्ते, नासां वयसि संस्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा, पुमानित्येव भुञ्जते॥
पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च, नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह, भर्तृष्वेता विकुर्वते॥ ६।१५

इत्यादि श्लोक (१४ से २१ तक) जिन में स्त्रियों की पेट भर निन्दा की गई है किसी स्त्री विद्वेषी नीच पुरुष की रचना है जिस ने सभी स्त्रियों पर व्यभिचार, प्रेमशून्यता, असत्य, काम, क्रोध, कुटिलता, द्रोह इत्यादि के दोष लगाने में भी संकोच नहीं किया। ये मनु महाराज की रचना नहीं हो सकती।

शय्यासनमलङ्कारं, कामं क्रोधमनार्जवम्।
द्रोहभावं कुचर्यां च, स्त्रीभ्यो मनुरकल्पयत्॥

अर्थात् मनु ने स्त्रियों के अन्दर काम, क्रोध, कुटिलता, द्रोह कुत्सित आचारादि चीजें रखदी हैं यह मनु महाराज स्वयं कैसे कह सकते थे? यह तो किसी महा नीच धूर्त की रचना है जिसने वेदों से भी अपने इन निन्दित भावों को समर्थित करने का अत्यन्त निन्दनीय और अक्षन्तव्य प्रयत्न किया है। स्त्रियों को निरिन्द्रियाः—अथवा इन्द्रिय रहिता कहना कितना प्रत्यक्ष विरुद्ध है? यहां तक कि इस कथन की असङ्गतता को अनुभव करते हुए कुल्लूक भट्ट को इन्द्रिय का अर्थ प्रमाण करके "धर्मप्रमाणश्रुतिस्मृतिरहितत्वान्न धर्मज्ञाः" अर्थात्

श्रुतिस्मृति रहिता होने के कारण धर्म ज्ञान शून्य ऐसा खैंचा-तानी का अर्थ करने को बाधित होना पड़ा। स्वयं पं० दीनानाथ जी के अन्दर ऐसे ही स्त्रियों के विषय में अत्यन्त निन्दित भावना भरी हुई है जो उनके लेखों से स्पष्ट है। ये भावनाएं वेदों के

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमाः
(अथर्व ६।१२२।५, ११।१।२७) इत्यादि

तथा सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥ (अथर्व १४।२।२६)

इत्यादि मन्त्रों के सर्वथा विरुद्ध हैं जहाँ स्त्रियों को शुद्धा, पवित्रा, पूजनीया, सुमङ्गली इत्यादि आदर सूचक शब्दों में स्मरण किया गया है। उन को 'अमन्त्राः' कहना भी वेदविरुद्ध है जैसे कि पहले अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया जा चुका है। मनुस्मृति के

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु, न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ मनु० ६।२६
अपत्यं धर्मकार्याणि, शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः, पितृणामात्मनश्च ह ॥ मनु० ६।२८
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ मनु० ३।५६

इत्यादि वास्तविक श्लोकों की भावना के सर्वथा विरुद्ध होने के कारण भी ये श्लोक अमान्य हैं जहाँ स्त्रियों को पूजनीया कह कर अग्नि होत्रादि धर्म कार्यों का उनके अधीन होना बताया गया है।

श्री पं० दीनानाथ जी ने "न वै कन्या न युवतिः" इस श्लोक को तोड़ मरोड़ कर स्त्री मात्र के होतृकर्म निषेध परक अर्थ करने का सिर तोड़यत्न किया है परन्तु उसमें उन्हें अणुमात्र भी सफलता नहीं मिली। आप कन्या का अर्थ अविवाहिता और 'युवतिः' का अर्थ 'विवाहिता' करके पीछा छुड़ाना चाहते हैं पर 'युवतिः' का विवाहिता मात्र (चाहे वह ७०-८० वर्ष की वृद्धा हो) अर्थ करना सर्वथा कपोल कल्पित है। किसी पौराणिक भाष्यकार के ऐसा अर्थ कर देने से वह प्रामाणिक नहीं बन जाता। साधारणतया बाला, युवतिः, प्रौढ़ा और वृद्धा शब्दों का प्रयोग आयु की दृष्टि से निम्न सुप्रसिद्ध श्लोक में बताया गया है। जो संस्कृत कोषों तथा आप्टे की विख्यात संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी में उद्धृत किया गया है कि:—

"आषोडशाद् भवेद् बाला त्रिंशता तरुणी मता।
पञ्चपञ्चाशता प्रौढा वृद्धा स्यात्तदनन्तरम् ॥

अर्थात १६ से कम आयु की कन्या बाला, १६ से ३० तक तरुणी वा युवती, ३० से ५५ तक प्रौढ़ा और उस के पश्चात् वृद्धा कहलाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि "न व कन्या न युवतिः"

इत्यादि वास्तविक श्लोकों की भावना के सर्वथा विरुद्ध होने के कारण भी ये श्लोक अमान्य हैं जहाँ स्त्रियों को पूजनीया कह कर अग्नि होत्रादि धर्म कार्यों का उनके अधीन होना बताया गया है।

श्री पं० दीनानाथ जी ने "न वै कन्या न युवतिः" इस श्लोक को तोड़ मरोड़ कर स्त्री मात्र के होत्रकर्म निषेध परक अर्थ करने का सिर तोड़यत्न किया है परन्तु उसमें उन्हें अणुमात्र भी सफलता नहीं मिली। आप कन्या का अर्थ अविवाहिता और 'युवतिः' का अर्थ 'विवाहिता' करके पीछा छुड़ाना चाहते हैं पर 'युवतिः' का विवाहिता मात्र (चाहे वह ७०-८० वर्ष की वृद्धा हो) अर्थ करना सर्वथा कपोल कल्पित है। किसी पौराणिक भाष्यकार के ऐसा अर्थ कर देने से वह प्रामाणिक नहीं बन जाता। साधारणतया बाला, युवतिः, प्रौढ़ा और वृद्धा शब्दों का प्रयोग आयु की दृष्टि से निम्न सुप्रसिद्ध श्लोक में बताया गया है। जो संस्कृत कोषों तथा आप्टे की विख्यात संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी में उद्धृत किया गया है कि:—

"आषोडशाद् भवेद् बाला त्रिंशता तरुणी मता।
पञ्चपञ्चाशता प्रौढा वृद्धा स्यात्तदनन्तरम्॥

अर्थात १६ से कम आयु की कन्या बाला, १६ से ३० तक तरुणी वा युवती, ३० से ५५ तक प्रौढ़ा और उस के पश्चात् वृद्धा कहलाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि "न व कन्या न युवतिः"

इस श्लोक में होतृकर्मार्थं निषेध कन्या और युवतियों पर (साधारणतया ३० वर्ष की आयु वाली स्त्रियों पर, लग सकता है उससे अधिक आयु की स्त्रियों पर नहीं। ३० वर्ष से अधिक आयु में जब कि ज्ञान पर्याप्त परिपक्व हो सकता है होतृकार्य कराने का भी पूर्ण अधिकार इस श्लोक से सिद्ध होता है।

"अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा सन्ध्योपासनमेव च।"

इस श्लोक के विषय में जो मनुस्मृति के कई पुराने संस्करणों में पाया जाता था जैसे कि स्मृतिरत्न में मनु के नाम से उद्धृत किया गया है (देखो कुल्लूक भट्ट टीका सहित मनुस्मृति चौखम्भा संस्कृत ग्रन्थ माला बनारस संवत् १९९२ संस्करण परिशिष्ट पृ० १)

पहले पं० दीनानाथ जी ने ३ जून १९४७ के 'सिद्धान्त' में लिख दिया कि 'आप इसे मनु का पद्य बतलाते हैं पर यह प्रक्षिप्त है। आश्चर्य है कि यह श्लोक संख्या में गणित न होने पर भी आप को इस की प्रत्यक्ष भी प्रक्षिप्तता क्यों नहीं सूझी। प्रक्षिप्त होने का अन्य प्रमाण यह है कि किसी भी टीकाकार ने इस की व्याख्या नहीं की।"..."आश्चर्य है कि प्रक्षिप्त पद को मनु कह देते हैं।"

(सिद्धान्त ३ जून १९४६)

इस लेख से मुझे इस बात पर प्रसन्नता हुई कि पं० दीनानाथ जी जैसे कट्टर पन्थी को भी अब मानना पड़ा कि मनु के नाम से कई श्लोक प्रक्षिप्त कर दिये गये। टीकाकार

पौराणिक होने के कारण इस प्रकार के स्पष्ट स्त्रियों के लिये सन्ध्योपासना और अग्निहोत्र का विधान करने वाले श्लोक पर मौनावलम्बन कर गये अथवा उसे अपने मन्तव्यविरुद्ध जानकर किन्हीं संकुचित विचारवालों ने मनुस्मृति से ही निकाल दिया तो इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं। आप जिस महाभारत के कई ऊटपटांग वेद विरुद्ध, स्त्रियों की निन्दा परक श्लोकों को निस्संकोच विना विवेक के उद्धृत कर देते हैं उस के विषय में भी आप के अभिमत मान्य ग्रन्थ गरुड पुराण में स्पष्ट लिखा है किः—

दैत्याः सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा
कलौ युगे भारते षट् सहस्र्याम्।
निष्कास्य कांश्चिन्नवनिर्मितानां
निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम्॥

(गरुडपुराण, ब्रह्मकाण्ड अ० १ श्लोक० ५९)

अर्थात् राक्षस कलियुग में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भारत के ६ हजार श्लोकों में से अनेक श्लोकों को निकाल कर उनके स्थान पर नये घड़े हुए अनेक कृत्रिम श्लोकों का प्रक्षेप कर देते हैं। यही बात श्री मध्वाचार्य ने

क्वचिद् ग्रन्थान् प्रक्षिपन्ति क्वचिदन्तरितानपि।
कुर्युः क्वचिच्च व्यत्यासं, प्रमादात् क्वचिदन्यथा।
अनुत्सन्नाः अपि ग्रन्था व्याकुला इति सर्वशः॥

महा भारततात्पर्य निर्णय अ० २ में कही है जिसको इसी अध्याय में पहले उद्धृत किया जा चुका है कि स्वार्थी लोग कहीं ग्रन्थों में वचनों को प्रक्षिप्त कर देते हैं, कहीं निकाल देते हैं, कहीं प्रमाद से या जान बूझ कर बदल देते हैं इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थ बड़े व्याकुल वा अस्तव्यस्त हो गये हैं। यह गड़बड़ स्मृतियों में बहुत ही अधिक हुई है जैसे कि परस्पर विरुद्ध वचनों से स्पष्ट सिद्ध होता है। इस प्रकार प्रक्षिप्त कह देने से काम न चलता देख और उससे अपने पक्ष की हानि देख कर पं० दीनानाथ जी ने उस श्लोक के अर्थ बदलने का दुस्साहस किया है। 'अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा' का अर्थ 'केवल अग्नि स्थान की सेवा इष्ट है होम नहीं' ऐसा उन्होंने लिख दिया है जो वेदादि सत्य शास्त्रों के स्पष्ट वचनों के विरुद्ध है। हम इसी अध्याय में या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः। देवासो नित्ययाशिरा ॥

(ऋ० ८।३१।५)

"वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवः" (ऋ० अष्टक २ वर्ग १६ म० ३) "वीतिहोत्रा कृतद्वसू" ऋ० ८।३१।६"

इत्यादि मन्त्रों को सायणभाष्य सहित पहले उद्धृत कर चुके हैं जिसमें सायणाचार्य ने स्वयं पौराणिक कुसंस्कार वश स्त्रियों के वेदाधिकार का कहीं २ निषेध करते हुए भी स्पष्ट स्वीकार किया है कि पति-पत्नी दोनों के यज्ञ करने का विधान और ऐसा करने वालों की स्तुति इन मन्त्रों में पाई जाती है।

'अत्र यजने दम्पत्योः स्तुतिः। यौ यज्ञकारिणौ जायापती। सोमाभिषवं कुरुतः तौ यष्टारौ सर्वदा। अन्न सहितौ तिष्ठाताम्॥ इत्यादि यणाचार्य जी के ऋग्वेद भाष्य में शब्द हैं जिनका सिवाय के कोई अर्थ हो ही नहीं सकता, कि जो यज्ञ करने वाले ति पत्नी होते हैं उन को पुत्र, धन तथा दीर्घायु प्राप्त होती है।

'वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवः' के भाष्य में ायणा-ार्य को लिखना पड़ा कि 'यद्यपि स्त्रिया नास्ति पृथगधि-ारस्तथापि पूर्वमीमांसायां षष्ठेऽधिकाराध्याये तृतीय-तुर्थाधिकरणाभ्यां स्त्रिया अस्त्येवाधिकारः स च पत्या हेति प्रपञ्चितत्वात्। 'जायापती अग्निमादधीयाताम्' इत्याधानविधानात् स्मृतिषु च 'नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतम् इति' (मनु० ५।१५५) इति पृथगधिकार-स्यैव निवारितत्वादस्त्येव स्त्रियाः पत्या सहाधिकारः। अध्ययनाभावेऽपि 'वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेत्' इति आश्वला. १।११ सूत्रकारवचनात् 'पत्न्यन्वास्ते' इत्यादि विधिषु 'सुप्रजसस्त्वा वयम्' इत्यादि मन्त्रविधानाद् यत्र वचनमस्ति तत्रास्त्येव मन्त्रेऽधिकारः तस्माद् मिथुना यज्ञं ततस्रे इत्येतद् युक्तम्॥

(सायणकृत ऋग्वेद भाष्य अष्टक २ वर्ग २० म०३ कल

संस्करण ख०३ पृ-

इस में सायणाचार्य जी ने लिखा कि यद्यपि स्त्री को
यज्ञ करने का अधिकार नहीं है तथापि पूर्व मीमांसा के अनुसार
पति के साथ उस का यज्ञादि करने का अधिकार है
स्त्रियों के लिए अनेक मन्त्रों के पढ़ने का विधान है जहां
विधान है उन मन्त्रों को पढ़ने का उस का अधिकर अवश्य
मनुस्मृति में निषेध पति से पृथक् यज्ञ का है न कि यज्ञ

इस लेख में श्री सायणाचार्य जी ने यद्यपि कुछ
पौराणिक कुसंस्कार वश घड़ ली हैं तथापि यह स्पष्ट है
स्त्रियों के पति के साथ यज्ञादि करने और अनेक वेदम
को पढ़ने का अधिकार उन्हें स्वीकार करना पड़ा है जि
अस्वीकार करना पं० दीनानाथ जी की हठधर्मिता और अत्य
संकुचित मनोवृत्ति को सूचित करता है। "यत्परः श
स शब्दार्थः" इस की दुहाई देने वाले शास्त्री जी

सा क्षौमवसना नित्यं, हृष्टा व्रतपरायणा ।
अग्निं जुहोति स्म तदा, मन्त्रवित्कृतमङ्गला ॥

बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग २०।१

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां, सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥

सुन्दर काण्ड १४।४

स्लोकों के जिन में कौशल्या देवी जी तथा सीता देवी
अग्नि होत्र तथा सन्ध्या करने का स्पष्ट वर्णन है अर्थ
डाले जैसे कि अगले अध्याय में दिखाया जाएगा।
भय से इस मनुस्मृति विषयक प्रकरण को यहीं समाप्त
जाता है। मनुस्मृति और उसके मेधातिथिभाष्य में
अधिक परिवर्तन हुए हैं यह श्री गङ्गानाथ झा द्वारा सम्पा-
मनुस्मृति के मेधातिथि भाष्य के निम्न स्लोक से भी जो
अध्यायों के अन्त में पाया जाता है ज्ञात होता है। निष्पक्ष
विद्वान् उस पर अवश्य ध्यान दें। वह स्लोक यह है:—

न्या कापि मनुस्मृति स्तदुचिता व्याख्यापि मेधातिथेः
लुप्तैव विधेर्वशात्क्वचिदपि प्राप्यं न तत्पुस्तकम्।
णीन्द्रो मदनः सहारणसुतो देशान्तरादाहृतैः
र्णोद्धारमचीकरत् तत इतस्तत्पुस्तकैर्लेखितैः ॥

(मेधातिथि रचित मनु भाष्यसहित मनुस्मृते रुपोद्घातः
—महामहोपाध्याय गङ्गानाथ झा लिखितः खण्ड ३ पृ०१)

अर्थात् कोई मान्य मनुस्मृति थी और उसकी मेधातिथि
कृत उचित व्याख्या थी। मेधातिथि व्याख्या सहित वह मनुस्मृति
भाग्यवश लुप्त हो गई और कहीं मिलती न थी। तब मदन
राजा ने इधर उधर लिखवाई हुई कई पुस्तकों से उसका जीर्णो-
द्धार करवाया।

ऐसी अवस्था में वर्तमान मनुस्मृति के सब श्लोकों सचमुच मनु का वचन समझना सर्वथा अनुचित है। उस अनेक प्रक्षेप हुए हैं। अतः उसके बेद विरुद्ध स्त्रियों की निन तथा वेदानधिकार सूचक श्लोकों को प्रामाणिक मानने को ह कभी बाधित नहीं हो सकते।

हारीत धर्म सूत्र के वचन

कन्याओं के उपनयन और वेदाध्ययन के विषय में हारीत धर्मसूत्र अ.२१।२०-२४ के वचन इससे पूर्व पृ.७३-७५ में उद्धृत किये जा चुके हैं जिन में दो प्रकार की स्त्रियों का उल्लेख करते हुए कहा है कि:—

द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनम् अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्या च। सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे काले कथंचिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः॥"

(हारीत धर्म सूत्र २१। २०-२४)

अर्थात् ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू ये दो प्रकार की स्त्रियां होती हैं। उन में से ब्रह्मवादिनियों का उपनयन, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और अपने घर में ही भिक्षा ये सब नियम होते हैं। सद्योवधुओं के लिये भी उपनयन आवश्यक है किन्तु वह विवाह काल उपस्थित होने पर करा दिया जाता है।

हारीत ने स्त्रियों के ये दो विभाग (जो उन के समय में प्रचलित थे) वर्णन करते हुए भूमिका के रूप में अपनी सम्मति स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर दी है कि ।

'न शूद्रसमाः स्त्रियः। नहि शूद्रयोनौ ब्राह्मण-क्षत्रियवैश्या जायन्ते तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः ॥"

अर्थात् स्त्रियां शूद्रों के समान नहीं हैं । शूद्र योनि में अर्थात् अशिक्षिता माताओं के उदर से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, साधारणतया नहीं होते इस लिये । वेद द्वारा स्त्रियों के सब संस्कार कराने चाहियें और वेद द्वारा उन्हें संस्कृता (उत्तम संस्कार युक्ता जिससे वे सन्तान पर उत्तम संस्कार डालने में समर्थ हो सकें) करना चाहिये ।

हारीत के ये वचन वेदानुकूल होने से मान्य हैं और अत्यन्त स्पष्ट हैं। इन वचनों को पराशरमाधवीय, स्मृति चन्द्रिका, चतुर्विंशति मत संग्रह, कमलाकर भट्ट प्रणीत 'निर्णय सिन्धु, भट्टयज्ञेश्वर रचित 'आर्यविद्यासुधाकर', शुचिव्रत जी शास्त्री कृत 'ऋगर्थ सूक्त संग्रह', रामकृष्ण भट्ट विरचित 'संस्कार गणपति' इत्यादि अनेक ग्रन्थों में उद्धृत किया गया है जैसे कि ७३-७५ पृष्ठों में दिखाया गया है किन्तु दुःख की बात यह है कि प्रायः इन सब ग्रन्थों के लेखकों ने इन वचनों के इतने स्पष्ट होने पर भी यह कह कर उड़ाने की चेष्टा की है कि ये विधान कल्पान्तर या युगान्तर विषयक हैं । उदाहरणार्थ कमलाकर भट्ट ने 'निर्णय सिन्धु' में इन वचनों को

'यत्तु हारीतः— द्विविधाः स्त्रियः...... तत्र ब्रह्मवादिनी नामुपनयन मग्नीन्धनं वेदाध्ययनम्.........कार्यम् ।"
तद् युगान्तर विषयम् ।
'पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जी बन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां, सावित्री वाचनं तथा' इति यमोक्तेः ।'

अर्थात् 'जो हारीत ने यह कहा है कि दो प्रकार की वधू होती हैं एक ब्रह्मवादिनी दूसरी सद्योवधू। उन में ब्रह्मवादिनियों का उपनयन, अग्नीन्धन, वेद पढ़ना और अपने घर में भिक्षा मांगना, करना चाहिये और सद्योवधुओं का उपनयन कर के विवाह करे। यह युगान्तर (अन्य युग) के विषय में है क्योंकि यम ने कहा है कि पहले कल्पों में स्त्रियों को मौञ्जी बांधना वेदों का पढ़ाना और गायत्री का उपदेश इष्ट था।"

(देखो निर्णय सिन्धु-टीकाकार पं० मिहिरचन्द्र शर्मा नवलकिशोर प्रेस लखनऊ सन १९३३ पृ० ४१०)

ऐसा ही 'स्मृति चन्द्रिका, 'चतुर्विंशति मतसंग्रह' इत्यादि के लेखकों ने लिखा है।

किन्तु यह बात कपोल कल्पित है हारीत के शब्दों में इस बात की कोई ध्वनि नहीं कि उन का यह आदेश कि

'तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः'

अर्थात वेद द्वारा स्त्रियों के संस्कार करने चाहियें और इन्हें

वेद के उपदेश द्वारा उत्तम संस्कार युक्त बनाना चाहियें किसी अन्य कल्प वा युग विषयक है। 'The Vedic Law of marriage' नामक अत्युत्तम ग्रन्थ के लेखक सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् श्री महादेव शास्त्री ने जो मैसूर प्राच्य विद्या विभाग पुस्तकालय के अध्यक्ष थे इस विषय में ठीक ही लिखा था कि Harita does not give us to understand that he is recording the effete statutes of a former yuga or Kalpa, on the contrary he insists on the observance of the laws he lays down giving some cogent reasons for his view. "(The Vedic Law of marriage P. 30)

अर्थात् हारीत हमें इस बात की कोई सूचना नहीं देता कि वह किसी पूर्व कल्प वा युग की लुप्त प्रथा का उल्लेख कर रहा है। इस के विपरीत वह जिस नियम का उल्लेख करता है कि स्त्रियों के वैदिक संस्कार अवश्य होने चाहियें उस पर बल देते हुए उस के युक्ति-युक्त कारण देता है।

यह भी स्पष्ट है कि हारीत स्वयं पूर्व कल्प वा युग का नहीं क्योंकि आपस्तम्ब ने उस का समकालीन आचार्य के रूप में उल्लेख किया है। श्री महादेव शास्त्री ने इसलिये उपसंहार करते हुए ठीक ही लिखा है कि "हारीत का जीवित काल जो कोई भी हो उस का कन्याओं के उपनयन तथा

वेदाध्ययनादि विषयक विधान वेदानुकूल होने से हमारे लिये अर्वाचीन स्मृतिकारों की अपेक्षा अधिक मान्य है।"

पं० दीनानाथ जी शास्त्री की हठधर्मिता और दुराग्रह इससे स्पष्ट है कि उन्होंने हारीत के सूत्रों में प्रयुक्त उपनयन का अर्थ 'पति के समीप' लाना यह करने की निन्दनीय चेष्टा की है जो अन्य किसी भी कट्टर पौराणिक भाष्यकार वा निबन्धकार ने नहीं की। उनके अनुसार 'उपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः' का अर्थ यह है कि पति के समीप लाकर कन्या का विवाह कर देना चाहिये मानो कि पति के समीप लाये विना भी उन के अभिमत प्रिय प्रतिनिधिवाद वा Proxy से विवाह हो सकता है जिससे उसके उल्लेख करने की आवश्यकता थी। ऐसी हठधर्मिता वा दुराग्रह का जिसकी निष्पक्षपात विद्वान् निन्दा किये विना न रहेंगे हमें उत्तर देने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। पं०दीनानाथजी के प्रायः लेख ऐसी ही असङ्गत और दुराग्रह सूचक बातों से भरे हुए होते हैं यद्यपि लम्बे और सार शून्य लेख लिखने का उन्हें व्यसन सा प्रतीत होता है।

यमस्मृति के वचन

यमस्मृति के

पुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां, सावित्रीवाचनं तथा॥

इत्यादि वचनों को पहले प्रकरणानुसार उद्धृत किया जाचुका है। पौराणिक भाष्यकारों ने इन्हीं वचनों को कन्याओं के उपनयन और वेदाध्ययन के अधिकार को इस युग में न स्वीकार करने के लिये मुख्य आधार वा ढाल बनाया है किन्तु उन का ऐसा करना सर्वथा अनुचित है। 'पुराकल्पेषु' का अर्थ 'पूर्व काल में निर्मित यज्ञविधिप्रतिपादक ग्रन्थों में' ऐसा ही लेना ठीक है न कि पूर्व कल्प में।

'कल्प' का अर्थ

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥
(मनु० २। १४०)

इत्यादि श्लोकों के भाष्य में सभी भाष्यकारों ने '**कल्पो यज्ञविद्या**' (कुल्लूकः) **कल्पशब्दः सर्वाङ्गप्रदर्शनार्थः** (मेधातिथिः) इत्यादि रूप में देते हुए उस का अर्थ यज्ञविद्या वा उस के प्रतिपादक ग्रन्थ का किया है जो वेदाङ्गों में से एक है और जिसमें यज्ञ विद्या का मुख्यतया वर्णन है। उत्तररामचरित में आये '**क्षात्रकल्पेनोपनीय**' इन शब्दों का अर्थ वीर राघवाचार्यादि ने "कल्प्यते ऽनुष्ठीयते ऽनेनेति कल्पः अनुष्ठानपरिपाटीप्रकाशको ग्रन्थः" इस रूप में किया है कि यज्ञादि के क्रम को बतलाने वाला ग्रन्थ। यही अर्थ कोषों में भी पाया जाता

है। इन के अतिरिक्त न्यायदर्शन अ० २ आह्निक २ सू० ६३ में 'स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः' इस सूत्र में आये पुराकल्प का अर्थ वात्स्यायन मुनि ने अपने भाष्य में 'ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकल्पः' ऐसा लिखा है और विधि का अर्थ पूर्व सूत्र 'विधिर्विधायकः' के भाष्य में 'यद् वाक्यं विधायकं चोदकं स विधिः" ऐसा किया है। इस प्रकार पुराकल्प का अर्थ इतिहास से समर्थित विधान—अथवा तत्प्रतिपादक ग्रन्थ होता है जो यमस्मृति के इस श्लोक में सङ्गत ही होता है। महामहोपाध्याय स्व० पं० शिवदत्त जी शर्मा ने इस विषय में ठीक ही लिखा था कि:—

पुराकल्प इति। कल्पपदमत्र न ब्राह्माहोरात्रपरम्। यतः अस्मिन्नपि कल्पे सीतादेव्याः सन्ध्योपासनं रामायणे गार्गीमैत्रेयीप्रभृतीनां ब्रह्मपरायणत्वं बृहदारण्यकादौ स्पष्टं प्रतीयते किन्तु षडङ्गान्तर्गतवैदिककर्मप्रक्रिया-प्रदर्शकसूत्रपरम्। अतएव 'प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन्' इति गोभिलीय गृह्यसूत्रे 'यज्ञोपवीतिनीम्' इति पदम्।"

अर्थात् यहां कल्प शब्द ब्राह्म अहोरात्र का वाची नहीं है क्योंकि इसी कल्प में रामायण में सीता देवी के सन्ध्योपासन करने और बृहदारण्यकोपनिषदादि में गार्गी मैत्रेयी आदि

की ब्रह्म (वेद) परायणता का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। किन्तु कल्प से तात्पर्य वेद के ६ अङ्गों के अन्तर्गत वैदिक कर्मों के क्रम आदि को सूचित करने वाले सूत्रग्रन्थ से है इसी लिये गोभिल गृह्यसूत्र में स्त्री के लिये 'यज्ञोपवीतिनीम्' इस पद का प्रयोग है। स्व० श्री पं० शिवदत्त जी शर्मा अत्यन्त सुप्रसिद्ध सनातनधर्माभिमानी विद्वान् थे जिनकी विद्वत्ता किसी भी अवस्था में पं० दीनानाथ जी से कम न थी।

श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री सनातनधर्मोपदेशक ने भी 'अछूतोद्धार निर्णय' नामक उत्तमग्रन्थ में 'पुराकल्पेषु' इस का अर्थ 'पुराकल्प ग्रन्थों में स्त्रियों को यज्ञोपवीत का विधान कहा गया है' ऐसा ही पृ० ४८ में किया है।

श्री पं० दीनानाथ जी ने पं० गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री जैसे उदार सनातनधर्माभिमानी विद्वान् के लिये बड़े अपमान जनक अनुचित शब्दों का प्रयोग किया है किन्तु उनसे किसी की योग्यता में कोई अन्तर नहीं आता। केवल लेखक की अपनी अयोग्यता और दुराग्रह सूचित होते हैं। जिन्हों ने 'पुराकल्पेषु' का उपर्युक्त युक्ति संगत अर्थ नहीं लिया उन्होंने इस का अर्थ "पूर्व युगों में" ऐसा कर दिया है जैसे कि निर्णयसिन्धु के उद्धरण में पाठकों ने देखा होगा। महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा और पं० परमेश्वरानन्द कृत व्याख्या सहित वैय्याकरणसिद्धान्त-कौमुदी में तो इस यमस्मृति के वचन का पाठ ही

पुरायुगेषु नारीणां मौञ्जीवन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा ॥

यह देते हुए लिखा है कि युगान्तरे ब्रह्मवादिन्यः स्त्रियः सन्ति तद्विषयकमिदम् उपाध्याया स्त्री आचार्या स्त्री इत्यादि । [सिद्धान्त कौमुदी पृ०५६६ मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित]

यद्यपि इस अर्थ को हम ठीक नहीं समझते तथापि इससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि सत्ययुग त्रेता और द्वापुर युग में कन्याओं का उपनयन होता था और वे वेद का अध्ययन अध्यापनादि करती थीं । कलियुग की अपेक्षा वैदिक धर्म का प्रचार उन युगों में अधिक था इस बात को सब विद्वान् मानते ही हैं इस लिये इस अर्थ के करने पर भी स्त्रियों के वेदाध्ययन तथा अध्यापनादिके अधिकार की वेदानुकूलता और प्राचीनता सिद्ध होती है ।

वसिष्ठ स्मृति का वचन

वसिष्ठ स्मृति के २१ वें अध्याय में स्त्रियों के गायत्री जप इत्यादि का स्पष्ट विधान निम्न वचनों द्वारा पाया जाता है:—

मनसा भर्तुरभिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरौदनं वा भुञ्जानाऽधः शयीत ऊर्ध्वं त्रिरात्रादप्सु निमग्नायाः

सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ २१–७ ॥ वाक्सम्बन्ध एतदेव मासं चरितोर्ध्वं मासादप्सु निमग्नायाः सावित्र्याश्चतुर्भिरष्टशतैः शिरोभिर्जुहुयात् पूता भवतीति विज्ञायते ॥ २१–७ ॥

[आनन्दाश्रम पूना संस्करण २७ स्मृतीनां समुच्चये वसिष्ठस्मृतिः पृ० २२१]

यहाँ स्त्री के लिये मनसे भी पति के लिये किसी प्रकार का बुरा भाव आने पर प्रायश्चित्त के रूप में १०८ अथवा ३२०० बार सावित्री मन्त्र "भूर्भुवः स्वः । तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्"॥

इस के जप का विधान है। सावित्री वा गायत्री मन्त्र को वेद माता के नाम से भी पुकारा जाता है। स्तुता मया वरदा वेदमाता । प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्॥ [अथर्व १९] इत्यादि में इसी वेद माता शब्द का प्रयोग है और उसे द्विजों को पवित्र करने वाला कहा है। प्राचीन वैदिक नियमानुसार उपनयन के पश्चात् वेदारम्भ संस्कार के समय इस पवित्र वेद मन्त्र का गुरु शिष्य को उपदेश देते हैं इस लिये ऐसा कथन उपयुक्त ही है । वह उपनयन "शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम्" इस आपस्तम्ब के वचना-

तुसार शूद्र कुलोत्पन्न बुद्धिमान और मद्य सेवनादि रहित धार्मि-बालकों का भी होता है जैसा कि विद्वद्वर रामकृष्ण भट्ट विरचित पारस्कर गृह्य सूत्र की विस्तृत व्याख्यात्मक "संस्कार गणपति" के "अथ शूद्राणामुपनयनम्" इस शीर्षक के नीचे आपस्तम्बः—शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् । मद्यपान-रहितानामिति कल्पतरुकारः ॥

[संस्कार गणपति चौखम्भा ग्रन्थ माला पृ०६४२]इत्यादि से स्पष्ट है। "यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः । (यजु० २६।२)इत्यादि वैदिक आदेश जिनकी मनुष्य मात्र के वेदाधिकार विषयक व्याख्या महर्षि दयानन्द जी के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० श्री सत्यव्रत जी सामश्रमी, वैदिक मुनि स्वामी हरिप्रसाद जी आदि ने ऐतरेयालोचन पृ० १७, स्वाध्याय संहिता पृ० ८२ इत्यादि में की है इस विषय में स्पष्ट ही है यद्यपि पं० दीनानाथ जी के इस विषयक विचार भी अत्यन्त संकुचित हैं जिनकी आलोचना का यह उप-युक्त अवसर नहीं। उपनयन के विना गायत्री मन्त्र का जप प्राचीन वैदिक परम्परा के सर्वथा विरुद्ध होने के कारण इस विधान से भी स्त्रियों का यज्ञोपवीत (जिस का हारीत ने ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू दोनों प्रकार की स्त्रियों के लिये विधान किया है) स्पष्टतया सूचित होता है।

प्रजापति स्मृति, वृहद्यमस्मृति आदि के कुछ वचनों से उपनयन सिद्धिः—

मनुस्मृति के "अतऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।।" (मनु० २।३६) तथा 'न वै कन्या न युवतिः' (११।३६) इस श्लोक में आये 'असंस्कृता' पद का अर्थ कुल्लूक भट्टादि ने 'अनुपनीत' अर्थात् उपनयन संस्कार रहित ऐसा किया है। यही अर्थ यदि अन्य स्मृतिवचनों में माना जाए तो कन्याओं का उपनयन और न होने पर उनका वृषली वा शूद्रा समझा जाना स्पष्ट सिद्ध होता है । उदाहरणार्थ निम्न स्मृति वचनों को लीजिये जहाँ असंस्कृता शब्द का प्रयोग हुआ है और उसकी निन्दा है—

प्रजापति स्मृतिः—

पितुर्गेहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
सा कन्या वृषली ज्ञेया तत्पतिर्वृषलीपतिः ।। ८५ ।।

बृहद् यम स्मृतिः—

पितुर्गृहे तु या कन्या पश्यत्यसंस्कृता रजः ।
भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः कन्या सा वृषली स्मृता ।। ३।१८।।
यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ।
असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः, स विप्रो वृषलीपतिः ।। ३।१९।।

देवलः—

पितुर्गृहे तु या कन्या, रजः पश्यत्यसंस्कृता ।
कन्या वृषली ज्ञेया, तद्भर्ता वृषलीपतिः ॥

इन श्लोकों में यह कहा गया है कि जो कन्या पिता के घर में उपनयन संस्कार के विना ऋतुमती हो जाती है वह वृषली वा शूद्रा कहाती और उसका पति शूद्रापति समझा जाता है। वह भाषण करने योग्य और ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठने योग्य भी नहीं रहती। उसके पिता को भी गर्भहत्या का पाप लगता है।

मैं जानता हूँ कि इन वाक्यों में असंस्कृता का अर्थ पौराणिक भाई 'अविवाहिता' कर देते हैं किन्तु कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि मनु० २।३६ तथा ११।३६। की टीका में 'असंस्कृता' का जो 'अनुपनीता' अर्थ लिया गया है वही यहाँ क्यों न लिया जाय जब कि वह प्राचीन आर्य मर्यादा के अनुकूल है। मार्कण्डेय का निम्न वचन जो हेमाद्रि प्रायश्चित्त काण्ड में उद्धृत किया गया है इस बात को स्पष्ट करता है कि 'असंस्कृता' का अर्थ 'अविवाहिता' नहीं 'अनुपनीता' ही लेना ठीक है। श्लोक निम्न है:—

'या कन्या पितृवेश्मस्था, यदि पुष्पवती भवेत् ।
असंस्कृता परित्याज्या, न पश्येत्तां कदाचन ॥

विवाहे च न योग्या स्यात्, लोकद्वयविगर्हिता।
एतां परिणयन् विप्रो न योग्यो हव्यकव्ययोः ॥
('विवाहकालविमर्शः' मैलापुर मद्रास पृ० ७६ से उद्धृत)

अर्थात जो कन्या पिता के घर में रहती हुई विना उपनयन संस्कार के ऋतुमती हो जाती है वह परित्याग करने योग्य वा निन्दनीय हो जाती है। उसकी दोनों लोकों में निन्दा होती है वह विवाह योग्य भी नहीं रहती। जो ब्राह्मण उसके साथ विवाह करता है वह हव्य कव्य के योग्य वा पूज्य नहीं रहता।

इस प्रकार ये श्लोक कन्याओं के उपनयन संस्कार को प्राचीन मर्यादा का स्पष्ट निर्देश करते हैं। वस्तुतः द्विजों का विवाह द्विजाओं के साथ होना ही वेदादि शास्त्र सम्मत और सर्व-प्रकार से युक्ति युक्त है। यजुर्वेद १२।५७ में पति पत्नी को सम्बोधन करते हुए कहा है "सं वां मनांसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ॥" अर्थात मैं परमेश्वर तुम दोनों के मन, व्रत और चित्त को एक बनाता हूँ। व्रत का अर्थ अहिंसा, सत्य, स्वाध्यायादि व्रत और शुभ कर्म होता है। पति विद्वान् और पत्नी अशिक्षिता होने पर उन का व्रत एक कैसे हो सकता है?

अथर्व १४।१।४२। के

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सनह्यस्वामृताय कम् ॥

में जो पत्नी को पति की अनुव्रता होकर सब प्रकार की प्रसन्नता, सुसन्तान, सौभाग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपदेश है वह भी तभी सम्भव है जब वह विदुषी होकर पति के वेदाध्ययन, अध्यापन, यज्ञादि व्रतों में सहयोग दे सके। सप्तपदी के अवसर पर जो ७ वार 'सा माम् अनुव्रता भव' ऐसा वर द्वारा कहा जाता है उसका तात्पर्य भी यही है।

उद्वहेत द्विजो भार्यां, सवर्णां लक्षणान्विताम्। मनु० ३।४।

इस मनु वचन में द्विज को सवर्णा से विवाह का जो विधान है वह कन्या के यज्ञोपवीत संस्कार रहिता और अशिक्षिता होने पर संगत नहीं हो सकता। वसिष्ठ स्मृति अ० ८ में **गृहस्था विनीतक्रोधहर्षो गुरुणा अनुज्ञातः स्नात्वा असमानार्षाम् अस्पृष्टमैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विंदेत"।** जो सदृशी भार्या के साथ विवाह का उपदेश है वह द्विज के ब्रह्मचारिणी, यज्ञोपवीतसंस्कारयुक्ता तथा वेदाध्ययन करने वाली कन्या के साथ विवाह पर ही लागू होता है वेदज्ञ विद्वान् की सदृशी वेदज्ञान तथा यज्ञोपवीत संस्कार रहिता अविदुषी नहीं हो सकती। हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र १९।२ में **'ताभ्याम् अनुज्ञातः भार्यामुपयच्छेत् सजातां नग्निकां ब्रह्मचारिणीम् असगोत्राम् ॥"** सूत्र द्वारा ब्रह्मचारिणी

कन्या के साथ विवाह का विधान है जिसका अर्थ 'असंस्पृष्टमैथुना' के अतिरिक्त ब्रह्म अर्थात् वेद को अध्ययन करने वाली स्पष्ट ही है। नग्निका का अर्थ मातृदत्तादि टीकाकारों ने भी मैथुनार्हा किया है। 'ब्रह्मचारिणी' के साथ विवाह का विधान महर्षि गार्ग्यायण प्रणीत 'प्रणववाद' के षष्ठ तरङ्ग के ३य प्रकरण में 'ब्रह्मचारिणाम् उद्वाहस्तु ब्रह्मचारिणीभिः सह प्रशस्तो भवति'। सति च द्वयोः ब्रह्मज्ञाने न हर्षशोका नापि चानियतकाले विकारोत्पत्तिर्न च रोगादिभवनम्। (प्रणववाद पृ० ३४५) इन शब्दों में स्पष्टतया पाया जाता है जहां ब्रह्मचारियों का विवाह ब्रह्मचारिणियों के साथ प्रशस्त बतलाया गया है और दोनों के ब्रह्मज्ञान (वेद और परमेश्वर विषयक ज्ञान) होने पर हर्ष, शोक, काम विकार और रोग उत्पत्ति को असम्भव कहा है। यहां यह भी स्पष्ट है कि ब्रह्मचारिणी का अर्थ केवल कुमारी नहीं है। महाभारत के

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा, कौमार ब्रह्मचारिणी।
योगयुक्ता दिवं याता तपःसिद्धा तपस्विनी॥

शल्य पर्व ५४।६

बभूव श्रीमती राजन्, शाण्डिल्यस्य महात्मनः।
सुता धृतव्रता साध्वी, नियता ब्रह्मचारिणी॥

शल्य पर्व० ५४।७

भारद्वाजस्य दुहिता, रूपेणाप्रतिमा भुवि।
श्रुतावती नाम विभो, कुमारी ब्रह्मचारिणी॥
शल्य पर्व ४८।२

इन श्लोक से भी यह बात स्पष्टतया प्रमाणित होती है। जहां सिद्धा, श्रीमती, श्रुतावती इत्यादि के लिये कुमारी के साथ ब्रह्मचारिणी शब्द का प्रयोग है जो वेदज्ञानसम्पन्नता का सूचक है।" आपस्तम्ब गृह्यसूत्र १४।१६, भारद्वाज गृह्यसूत्र, वाराह गृह्यसूत्र १४।२६, पारस्कर १ ६।३ इत्यादि में विवाह के अवसर पर वर-वधू को 'सामाहमस्मि ऋक् त्वम्' इस प्रकार कहता है। उसे वेदज्ञान का अधिकार न होने पर तथा उससे शून्या होने पर ऋग्वेदस्वरूपिणी कहना सर्वथा असङ्गत हो जाता है। इस लिये हारीत संहिता २१।२० में स्पष्ट कहा है कि:—"न शूद्रसमाः स्त्रियः। न हि शूद्रयोनौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः जायन्ते। तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः॥ अर्थात् स्त्रियां शूद्रों के समान नहीं। शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य नहीं उत्पन्न होते। इस लिये स्त्रियों के भी सब संस्कार वेद मन्त्र सहित होने चाहियें।

वस्तुतः वेदज्ञानसम्पन्ना विदुषी माता ही बाल्यावस्था में बालकों पर श्रेष्ठ प्रभाव डाल सकती है। इसी लिये उस के विषय में लिखा है कि:—

सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते ॥
मनु० २।१४५

अर्थात् आचार्य का मान १० उपाध्यायों के समान है, पिता का सौ आचार्यों के बराबर और माता अपने गौरव से १००० पिताओं से भी बढ़कर होती है। ऐसी माता को वेदज्ञानरहिता अथवा अशिक्षिता रखना समाज के लिये कितना घातक है इसे श्री पं० दीनानाथ जी शास्त्री जैसे विद्वान् क्यों नहीं समझते यह बड़े आश्चर्य और खेद की बात है।

महाभाष्यादि में स्त्रियों के उपाध्याया, आचार्या तथा व्याकरण, मीमांसादि शास्त्रों की पण्डिता होने का स्पष्ट निर्देश है। उदाहरणार्थ 'इङश्च' ३।३।२१ के महाभाष्य में लिखा है:—

"उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी उपाध्याया ॥"

अर्थात् जिस के पास आकर कन्यायें वेद के एकदेश तथा वेदाङ्गों का अध्ययन करें वह उपाध्यायी वा उपाध्याया कहलाती है। उपाध्याय का लक्षण मनुजी ने

"एकदेशं तु वेदस्य, वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थम्, उपाध्यायः स उच्यते" ॥२।१४१

किया है। उस लक्षणयुक्त स्त्री उपाध्याया होती है। "आचार्यादणत्वं च" (अष्टाध्यायी ४।१।२।४६ पर वार्तिक) पर महाभाष्य में "आचार्यादणत्वं चेति वक्तव्यम् आचार्यानी"। इस पर सिद्धान्त कौमुदीकार ने वार्तिक उद्धृत कर

के लिखा है "आचार्यस्य स्त्री--आचार्यानी पुंयोग इत्येव आचार्या स्वयं व्याख्यात्री" (सिद्धान्त कौमुदी स्त्री प्रत्यय पृ०५६ पण्डित पुस्तकालय काशी द्वारा संवत १६६६ में प्रकाशित) अर्थात् जो स्वयं वेदों का व्याख्यान करने वाली हो उसे आचार्या कहेंगे । आचार्य का लक्षण मनु महाराज ने

'उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।

सकल्पं सरहस्यं च, तमाचार्यं प्रचक्षते ॥२।१४०

ऐसा किया है अर्थात् जो शिष्य का उपनयन संस्कार कर के कल्प अर्थात यज्ञ विद्या (कल्पो यज्ञविद्येति कुल्लूकः । सकल्पं–यज्ञकल्पसहितम् इति राघवः) और रहस्य वागूढ़ तात्पर्य सहित जो वेद पढ़ाता है आचार्य कहाता है। ऐसे ही कल्प और रहस्य सहित वेद पढ़ाने वाली स्त्री को आचार्या कहते हैं। यहां व्याख्यात्री से साधारण व्याख्यान देने वाली का ग्रहण करें तो बड़ा अनर्थ हो जाएगा। उस अवस्था में किसी भी छोटी मोटी व्याख्यान देने वाली स्त्री को (जिनकी संख्या आज कल लाखों की है) आचार्या कहना पड़ेगा । अमरकोष द्वितीय काण्ड मनुष्य वर्ग श्लोक ५७७ में इस विषय में कहा है—

'उपाध्यायाप्युपाध्यायो, स्यादाचार्यापि च स्वतः ।

आचार्यानी तु पुंयोगे, स्यादर्यी क्षत्रियी तथा ॥

अमरकोष २ ।२७७

इस की टिप्पणी करते हुए श्री पं० काशीनाथ जी शास्त्री शास्त्राचार्य अध्यापक काशी हिन्दू विश्व विद्यालय रणवीर संस्कृत पाठशाला ने लिखा है कि उपाध्यायी और उपाध्याया ये दो विद्या पढाने वाली स्त्री के नाम हैं। मन्त्र की व्याख्या करने वाली स्त्री को आचार्या कहते हैं। (देखो अमर कोष टिप्पणीकार-पं० काशीनाथ शास्त्री शास्त्राचार्य प्रकाशक फर्म बा० बैजनाथप्रसाद राजा दर्वाजा, बनारस सिटी विक्रमी संवत १६६८ पृ० १३३)

स्व० महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त जी शर्मा ने भी सिद्धान्त कौमुदी को सम्पादन करते हुए ठीक इसी आशय की टिप्पणी देकर अन्त में लिखा है कि:—

उपनीय तु यः शिष्यम्...इति वचनेनापि स्त्रीणां वेदाध्यापनाधिकारो ध्वनितः॥

(सिद्धान्त कौमुदी टिप्पणी स्त्री प्रत्यय पृ० ८४)

अर्थात् इस से स्त्रियों का वेद पढ़ाने का अधिकार सूचित होता है। इस प्रकार शास्त्री जी की इस विषयक टालमटोल सर्वथा व्यर्थ सिद्ध होती और स्त्रियों का वेद पढ़ने पढ़ाने का अधिकार स्पष्टतया सिद्ध होता है। क्या शास्त्री जी 'आचिनोति अर्थान्' इस यौगिक अर्थ को लेकर अंग्रेजी शब्दों के अर्थ बताने वालों को भी आचार्य के पवित्र नाम से संबोधित करेंगे?

———

पञ्चम अध्याय

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार

इस पुस्तक के ४ अध्यायों में मैंने वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, श्रौतसूत्रों, गृह्य सूत्रों और स्मृतियों की दृष्टि से इस विषय का प्रतिपादन किया है कि पुरुषों के समान स्त्रियों को वेदों के अध्ययन, अध्यापन और वैदिक कर्मकाण्ड के करने कराने का पूर्ण अधिकार है। इस अध्याय में मैं ऐतिहासिक दृष्टि से इस विषय पर कुछ मुख्य उदाहरण रखना चाहता हूँ ताकि पाठक पाठिकाओं को यह ज्ञात हो सके कि हमारे पूर्वज आर्यों का सदाचार इस विषय में क्या रहा है। धर्म के साक्षात् ४ लक्षणों में सदाचार को भी माना गया है। मनुस्मृति में लिखा है:—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः, स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् श्रुति (वेद) स्मृति, सदाचार और जो अपने आत्मा को प्रिय हो ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण हैं अर्थात् इन से धर्म का ज्ञान प्राप्त हो सकता है॥ (लक्ष्यते धर्मोऽनेनेति लक्षणम्)

इन में से श्रुति, स्मृति के प्रामाण्य के विषय में चतुर्थ अध्याय में बताया जा चुका है कि जहां श्रुति और स्मृति का

विरोध प्रतीत हो वहां श्रुति अथवा वेद वचन ही प्रामाणिक माना जाना चाहिये स्मृतियों का नहीं। क्योंकि उन में अनेक प्रक्षेप हुए हैं और वे भिन्न २ कालों में भिन्न २ व्यक्तियों द्वारा बनाई जाती रही हैं।

सदाचार की मान्यता भी वहीं तक है जहां तक वह वेद और वेदानुकूल स्मृति के विरुद्ध न हो अन्यथा नहीं। इस विषय में वसिष्ठ स्मृति के निम्न वचन उल्लेखनीय हैं कि 'श्रुति स्मृति विहितो धर्मः ॥१।३ तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्। १।४ शिष्टः पुनरकामात्मा ॥१।५

अर्थात जो वेद और तदनुकूल स्मृति में विहित है वह धर्म है। शिष्टाचार तभी प्रमाण है जब वेद और वेदानुकूल स्मृति के स्पष्ट वचन किसी विषय में उपलब्ध न हों। शिष्ट पद से उनका ग्रहण होता है जो कामात्मा अथवा कामासक्त न हों। निःस्वार्थ हों। जो वेदों और स्मृतियों के पूर्ण तत्वज्ञ हों। सदाचार के नाम से कई पौराणिक भाई प्रचलित अन्ध परम्पराओं और रूढ़ियों को भी धर्मानुसार सिद्ध करने का यत्न करते हैं वह अनुचित है।

अब मैं वैदिक काल में कन्याओं और स्त्रियों की वेदाध्ययन, वेदाध्यापन तथा वैदिक कर्मकाण्ड विषयक क्या स्थिति थी उस पर थोड़ा सा लिखना चाहता हूँ।

वैदिक काल में स्त्रियों का वेदाधिकार

यह स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि वैदिक

काल से तात्पर्य केवल उस काल से नहीं है जिसे हम वेदों का प्रादुर्भावकाल अथवा सृष्टि की उत्पत्ति का काल मानते हैं और जो अब १ अरब ९७ करोड़से कुछ अधिक है। जब तक वेदों का विशेष प्रचार रहा और आर्य लोग वेदों की आज्ञानुसार आचरण करते रहे वह वैदिककाल के नाम से साधारणतया पुकारा जाता है। रामायण और महाभारत काल की दृष्टि से हम पृथक् विचार करेंगे अतः उससे पूर्व के काल पर मुख्य दृष्टि से यहां विचार होगा। वैदिक काल में कन्याओं का बालकों के समान उपनयन संस्कार होता था और वे वेदाध्ययन करती और वैदिक कर्मकाण्ड में पूर्ण भाग लेती थीं। उन में से अनेक वेदों का अध्ययन करके उनके रहस्यों को जान कर प्रचार करती थीं और ब्रह्मवादिनी वा ऋषिकाओं के नाम से पुकारी जाती थीं। इस विषय में प्राचीन और आधुनिक सभी निष्पक्षपात विद्वान् एकमत हैं सिवाय पं० दीनानाथ जी के जिन्होंने वेदों से भी स्त्रियों का वेदाध्ययन निषेध सिद्ध करने का घोर दुस्साहस किया है। जिन नवीन स्मृतियों वा पुराणों में स्त्रियों के वेदाधिकार तथा उपनयन का निषेध है उनमें भी स्वीकार किया गया है कि प्राचीन काल में विशेषतः कलियुग के अतिरिक्त अन्य युगों में यह अधिकार माना जाता था। इस पुस्तक के पृष्ठ २०-२१ पर "ऋषिकाएं" इस शीर्षक से हमने बृहद् देवता के अ० २४ के आधार पर गोधा, घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत, निषत, जुहू,

अदिति, इन्द्राणी, इन्द्र माता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, यमी, नारी, शश्वती, श्री, लक्ष्मी, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री, सूर्यासावित्री इत्यादि कई प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनियों की सूची दी है जिन्हें वेद मन्त्रों की द्रष्टी अथवा उनके रहस्य के दर्शन और प्रचार के कारण (ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः ऋषिर्दर्शनात्-स्तोमान् ददर्शेति यास्कीय निरुक्त] ऋषिका के गौरव सूचक शब्द से भी पुकारा जाता था। उनके अतिरिक्त आर्षानुक्रमणी में पृथक् २ सूक्तों की ऋषिकाओं की सूची भी पाई जाती है जिनमें से उदाहरणार्थ कुछ श्लोक यहां उद्धृत किये जाते हैं—

तद्भार्या रोमशा नामोपोत्तमस्या उपोत्तमे ।
पूर्वीरिति च सूक्तस्य, संवादस्य द्व्यृचास्त्रयः ।
लोपामुद्रा द्व्यृचे पूर्वे, अगस्त्यो मध्यमे द्व्यृचे ॥ १।३०
समिद्धो अग्न इत्यस्मिन्, विश्ववारात्रिगोत्रजा ॥ १।१५
प्रयोगपुत्र आसङ्गस्तस्य पत्नी तु शश्वती ।
अन्वस्य स्थूरमित्यस्याः, सा च त्वङ्गिरसः सुता ॥ ८।६
अपाला नाम कन्येति, सूक्तस्यात्रेः सुता मुनिः ॥ १।३६
कक्षीवतः सुता घोषा ह्यृपिकेत्यत्र कीर्तिता ॥१०।१५
सत्येनोत्तभिता सूक्तं, सूर्यासावित्रीत्यार्षं तत् ॥१०।३२

उदसौ त्वस्य पौलीमी, शची नाम मुनिः स्मृता ॥१०।८१

आयं गौरिति सूक्तस्य, सार्पराज्ञी मुनिः स्मृता ॥१०।६८

इत्यादि श्लोकों द्वारा वृहद् देवता की आर्षानुक्रमणी में अनेक वैदिक सूक्तों की ऋषिकाओं का विवरण सहित वर्णन है। इन के होते हुए कोई भी निष्पक्षपात विद्वान् इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि वैदिक काल में स्त्रियां न केवल वेदों को पढती पढ़ाती थीं किन्तु उनका मनन करके प्रचार भी करती थीं।

आधुनिक भारतीय विद्वानों में से महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाशादि में, श्री पं०सत्यव्रतजी सामश्रमी ने 'ऐतरेयालोचन' में, श्री रमेशाचन्द्र दत्त ने History of Civilisation in India में, श्री भगवत् शरण उपाध्याय एम. ए. ने "Women in Rigveda" में, डा० ऐट्लेकर M. A. LL. B. D. Litt. ने 'The Education in Ancient India' और "The Position of Women in Hindu Civilisation" में, महामहोपाध्याय श्री पं० शिवदत्त जी शर्मा ने 'आर्य विद्या सुधाकर, वैय्याकरणसिद्धान्तकौमुदी, जैमिनीयन्यायमाला-विस्तारः, 'निर्णयसिन्धु' इत्यादि संस्कृत-ग्रंथों की टीकाओं व भूमिकाओं में, पं० नृसिंहदेव जी शास्त्री ने 'कुन्दमाला' की टीका में, श्री वामन पाण्डुरंग M. A. LL. M. ने "History of Dharma Shastras' में, श्री महादेवजी शास्त्री ने "The Vedic Law of Marriage" में, मि० रागोजिन ने 'Vedic

India' में, डा० गोथरस मोज M.A. LL.D. ने "Dharma and Society" में इस बात को संप्रमाण बताया है कि प्राचीन काल में कन्याओं का उपनयन होता था और स्त्रियां न केवल वेदाध्ययन करती थीं बल्कि ऋषिकाएं भी बनती थीं। डा० मीज ने तो 'Dharma and Society' P. 71 में बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि:—

"In Rigvedic India there were women Rishis, the wives participated in the Ceremonies with their husbands."

"They were highly honoured and respected and could even perform the function of a priest at a sacrifice."

अर्थात् ऋग्वेदीय भारत में ऋषिकाएं भी हुआ करती थीं और स्त्रियां अपने पतियों के साथ यज्ञों और संस्कारों में भाग लेती थीं। उनका बड़ा मान होता था और वे यज्ञों में पौरोहित्य भी कर सकती थीं।

इनके अतिरिक्त बनारस हिन्दूविश्वविद्यालय के उपाध्यक्ष जगद्विख्यात विद्वान श्री डा० राधाकृष्ण जी ने Religion and Society में, श्री भट्ट गोपीनाथ ने संस्कार पद्धति के उपोद्घात में, श्री रघुनाथराव अध्यक्ष ब्रह्मविज्ञानपरिषत् चित्र दुर्ग ने 'स्त्रीसंस्कारप्रकाशिका' में और श्री महाराणी शङ्कर तथा इन्दु-शर्मा जी ने 'कन्योपनयन संस्कार' में इस विषय का प्रतिपादन

किया है कि वैदिक काल में कन्याओं का यज्ञोपवीत होता था और वे वेदाध्ययन करती कराती तथा वैदिक कर्म काण्ड में सक्रिय भाग लेती थीं।

जहां तक हमें ज्ञात है पं० दीनानाथ जी अकेले ही विद्वान् हैं जो इस बात से भी इन्कार यह कह कर करना चाहते हैं कि ऋषिकाओं और देवियों की योनि मनुष्यों से पृथक् है तथा ऋषिकाएं पढ़ती नहीं थीं उन्हें स्वयं ही वेदमन्त्रों का भान वा अर्थ ज्ञान हो जाता था इत्यादि। ऋषि को मनुष्य-योनि से पृथक मानने की शास्त्री जी की कल्पना इतनी उपहासास्पद है कि उसका खण्डन करना निष्पक्षपात विद्वानों का अपमान करना प्रतीत होता है तथापि इस विषयक ३, ४ अति स्पष्ट प्रमाण उद्धृत करने में कोई हानि नहीं।

"ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः"

यह निरुक्तकार यास्काचार्य जी का सुप्रसिद्ध वचन है जिसका अर्थ है कि मन्त्रों का साक्षात् दर्शन करने वाले अथवा उनके रहस्य को पूर्णतया समझने वालों को ऋषि कहते हैं।

शास्त्री जी के मान्य भाष्यकार सायणाचार्य जी ने 'यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमंजाः पुराणाः। यजु, १८।५८ के भाष्य में 'ऋषयः' का अर्थ 'मन्त्र द्रष्टारः' किया है।

(सायणकृत काण्वसंहिता भाष्य पृ० १८७)

'काद्रवेय ऋषिर्मन्त्रकृत्' इस ऐतरेय अ-२६ में पाये जाने वाले वाक्य के भाष्य में सायणाचार्य ने ऋषिः—अतीन्द्रि-

यार्थद्रष्टा। मन्त्रकृत्—करोतिधातु स्तत्र दर्शनार्थः"
ऐसा लिखा है (ऐतरेय सायरण भाष्य पृ० ६७७)

ऐसे ही "प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः" इस मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य ने 'ऋषयः' का अर्थ 'अतीन्द्रियार्थ-द्रष्टारः' अर्थात इन्द्रियों से परे आत्मादि तत्त्व के द्रष्टा यही अर्थ किया है। (ऐतरेय सायण भाष्य भा. १ पृ० २३७)

इतना ही नहीं 'अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः, ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपावा" (यजु ५।४) इस वेद मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य ने लिखा है 'ऋत्विजः वेदविदश्चात्र ऋषय इत्युच्यन्ते" अर्थात् यज्ञ करने वाले ऋत्विक् और वेद जानने वालों को यहां ऋषि कहा गया है। (सायणकृत काण्व-संहिता भाष्य पृ० ५४)

'अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोम गोपाः।'
(काण्व संहिता अ० १३)

इस मन्त्र के भाष्य में सायण ने लिखा है (ऋषिभिः) ऋत्विग् यजमानैः अर्थात ऋषि का अर्थ ऋत्विक् और यजमान है।

'ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयम्।'

इस यजु० अ० ६ की व्याख्या में शतपथ ब्राह्मण में

लिखा है कि 'यो वै ज्ञातोऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः ॥'
(शतपथ ४ ३।४।१६ अच्युत ग्रन्थ माला काशी संस्करण पृ० ४४६)

अर्थात् जो प्रसिद्ध वेदशास्त्र का पढ़ने वाला हो वह ऋषि कहलाता है। 'अनूचानः' का अर्थ सायणाचार्य ने भी 'साङ्गवेदाध्यायी' अर्थात् अङ्ग सहित वेदों का अध्ययन करने वाला यह किया है इस लिये ऋषिकाओं के वेद न पढ़ने की बात भी खण्डित हो जाती है । बौधायन गृह्यसूत्र प्र०१ अ० ७ में 'चतुर्वेदार्षि' ये शब्द पाये जाते हैं जिन का स्पष्ट अर्थ है कि चारों वेदों का अध्ययन अर्थ सहित करने से मनुष्य ऋषि बनता है और ऐसे ऋषि को उत्पन्न करने के लिये गृह्यसूत्रकार विवाह के पश्चात् १ वर्ष पर्यन्त पूर्ण आत्म संयम वा ब्रह्मचर्य आदि साधन बतलाते हैं। इन सब अति स्पष्ट प्रमाणों से स्पष्ट है कि ऋषि उच्चकोटि के वेदज्ञ तत्त्वदर्शी मनुष्य होते हैं। उन की पृथक् योनि होने की शास्त्री जी की कोरी कल्पना सर्वथा अमान्य है। हां, उन का साधारण मनुष्यों से कोटि भेद अवश्य होता है।

देव, देवी विषयक शास्त्री जी का भ्रम

ऐसे ही पं० दीनानाथ जी शास्त्री इन्द्र माता, इन्द्राणी, यमी, उर्वशी इत्यादि के ऋषिका होने की बात को यह कह कर उड़ाना चाहते हैं कि ये देवियां थीं मानुषी स्त्रियां नहीं। देव देवियों की मनुष्यों से पृथक् योनि है इत्यादि। देव के विषय में विस्तृत विचार करने के लिये यहां अवसर नहीं क्योंकि

वह एक स्वतन्त्र विस्तृत निबन्ध वा ग्रन्थ की अपेक्षा रखता है। किन्तु निम्न लिखित प्रमाण देव या देवी के मनुष्यपरत्व सिद्ध करने के लिये इतने स्पष्ट हैं कि उन में सन्देह का कोई कारण ही नहीं हो सकता। प्रथम तो जिन ऋषिकाओं और ब्रह्मवादिनियों के नाम बृहद् देवता की आर्षानुक्रमणी से ऊपर उद्धृत किये गये हैं उन में से अनेक स्त्रियां पौराणिकों के विश्वासानुसार भी मनुष्य लोक की हैं जैसे गोधा, घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत्, आदति आदि। वस्तुतः देव शब्द के 'देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा द्यु स्थानो भवतीति वा' इस निरुक्त की व्युत्पत्ति के अनुसार अनेक अर्थ होते हैं और सूर्य, चन्द्र, विद्युत, अग्नि आदि के लिये भी उसका प्रयोग होता है। इसी को पृथक् योनि कहा गया है। मनुष्यों में से सत्यनिष्ठ श्रेष्ठ विद्वानों विशेषतः ब्राह्मणों के लिये देव और ऐसी स्त्रियों के लिये देवी शब्द का प्रयोग सर्व शास्त्र सम्मत है। उदाहरणार्थ शतपथ ४।३।४।४ (अच्युत ग्रन्थ माला संस्करण पृ० ४७३) में लिखा है:—

द्वया वै देवाः। अहैव देवाः अथ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः.........यज्ञ आहुतय एव देवानां दक्षिणा मनुष्यदेवानां ब्राह्मणानां शुश्रुवुषामनूचानानाम् आहुतिभिरेव देवान् प्रीणाति दक्षिणाभिर्मनुष्यदेवान् ब्राह्मणान् शुश्रुवोऽनूचानान्

एनमुभये देवाः प्रीताः स्वर्गं लोकमभिवहन्ति ।"

(शतपथ ४।३।४।४)

यहां स्पष्ट साङ्ग वेदाध्ययन करनेवाले ब्राह्मणों को मनुष्य-देव कहा गया है वह अग्नि सूर्यादि प्राकृतिक जड़ (प्रकाशक) देवों से उनके भेद के लिये है। वैसे उन के लिये "द्वया वै देवाः" 'उभये देवाः' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि देव शब्द उनके लिये भी अवश्य प्रयुक्त होता है अन्यथा 'दोनों प्रकार के देव' ऐसा नहीं लिखा जा सकता। इस प्रकार शास्त्री जी का यह लिखना कि ब्राह्मणों के लिये मनुष्य का पुछल्ला जुड़ा हुआ है वे मनुष्य देव कहला सकते हैं केवल देव नहीं सर्वथा अशुद्ध सिद्ध होता है।

इसी प्रकार के वाक्य षड्विंश ब्राह्मण १।१।१ में भी पाये जाते हैं "अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः" ऐसा कहा है। अर्थ पूर्ववत् है।

शतपथ २।४।४।१४ पृ० २०८ में पुनः 'द्वया वै देवा देवाः। अहैव देवाः अथ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः' ऐसा लिखा है। यहां भी ब्राह्मणों के लिये मनुष्य देव ही नहीं, केवल देव शब्द का प्रयोग भी स्पष्ट है।

तैत्तिरीय संहिता १।७।३ में भी स्पष्ट है कि "एते वै देवाः प्रत्यक्षं यद् ब्राह्मणाः" अर्थात् ब्राह्मण प्रत्यक्ष देव हैं।

गोपथ उत्तर भाग प्र० १ क.६ में भी यही बात कही है कि 'द्वया वै देवा यजमानस्य गृहमागच्छन्ति सोमपा अन्येऽसोमपा अन्ये हुतादोऽन्येऽहुतादोऽन्ये एते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणाः' यहां भी ब्राह्मणों के लिये देव शब्द का स्पष्ट प्रयोग है।

'उदु त्वा विश्वे देवाः' की व्याख्या में काठक संहिता १६।१२ में लिखा है 'मनुष्या वै विश्वे देवाः' (पृ० २०७) इस से बढ़ कर देवों के मनुष्यपरत्व होने का क्या प्रमाण हो सकता है?

मैत्रायणी संहिता १।४।३५ में भी 'एते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणाः' ऐसा स्पष्ट लिखा है।

'एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्त विश्वे" इस यजु० ४।१ की व्याख्या में सायणाचार्य जी को भी लिखना पड़ा है कि 'अस्मिन् मन्त्रे देवशब्देन षोडश ऋत्विजो ब्राह्मणा विवक्षिता इति तित्तिरिरेव दर्शयति। विश्वे ह्येतद् देवा जायन्ते ब्राह्मणा इति। अर्थात् इस मन्त्र मे देव का अर्थ ऋत्विक् ब्राह्मण है।

ऐसे ही इन्द्र शब्द के यजमान इत्यादि अर्थों में प्रयोग को ब्राह्मणादि में माना गया है। 'इन्द्रो वै यजमानः' शतपथ ५।१।३।४, ५।१।४।२ 'द्वयेन वा एष इन्द्रो भवति यच्च क्षत्रियो यदु च यजमानः॥' शत० ५।३।५।२७, ५।४।३।४ 'इन्द्रस्यो-

रुमाविश' इस यजु० के भाष्य में सायणाचार्य जी ने लिखा है कि 'यजमानरूपेण परमैश्वर्योपेतत्वादत्रे न्द्रशब्देन यजमानो विवक्षितः ।।(सायणीय काण्वसंहिता भाष्य पृ० ४५)

अर्थात् यहां इन्द्र का अर्थ परमैश्वर्य सम्पन्न होने से यजमान है। ऐसे यजमान की पत्नी इन्द्राणी कहाएगी। इस लिये शास्त्रीं जी का टालमटोल कि ये देवियों के विषयक मन्त्र वा उनकी रचना है मानुषी स्त्रियों का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं इत्यादि सर्वथा असफल और व्यर्थ सिद्ध होती है।

'महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।

इस मन्त्र की व्याख्या में जो ऋग्वेद तथा सामवेद में आया है और जिसका प्रयोग ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार सम्राट् के राज्याभिषेक में होता है राजा की माता के लिये देवी शब्द का प्रयोग स्पष्ट है। सायणाचार्य ने भी 'तवोत्पादिका मातृ-रूपा देवी' यही अर्थ ऐतरेय भाष्य भाग २ पृ० ६११ आनन्दाश्रम सं० में किया है।

बाल्मीकि रामायण में कैकेयी, कौशल्या, इत्यादि के लिये देवी 'शब्द' का प्रयोग निम्न तथा अन्य श्लोकों में अत्यन्त स्पष्ट है।

एतत्तु वचनं श्रुत्वा कैकेय्या समुदाहृतम् ।
उवाच व्यथितो रामस्तां देवीं नृपसन्निधौ ॥
अहो धिङ् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदृशं वचः ॥
रामा० २।१८।२८

कौशल्या जी के प्रति राम जी की उक्तिः—

देवि नूनं न जानीषे महद्भयमुपस्थितम् ॥
सा निकृत्तेव शालस्य यष्टिः परशुना वने ।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ॥२।२०।३२

इस प्रकार लौकिक संस्कृत में भी जब देवी शब्द का प्रयोग होता है तो वैदिक साहित्य में तो उपर्युक्त प्रमाणानुसार विदुषी स्त्रियों के लिये उस के प्रयोग में सन्देह ही क्या है ?

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥

इस अथर्ववेद के कन्याओं के ब्रह्मचर्य (मुख्यतया वेदाध्ययन जैसे कि उसके शब्दार्थ ब्रह्म-वेद-चर्य—चरगति भक्षणयोः-गतिः-ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च इससे स्पष्ट है) प्रतिपादक मन्त्र को पृ० २६ पर पहले उद्धृत किया जा चुका है तथा वहीं ब्रह्मचर्य शब्द के मुख्यार्थों पर भी पर्याप्त विचार किया जा चुका है । स्वनाम धन्य महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के अतिरिक्त अन्य सुप्रसिद्ध निष्पक्षपात विद्वानों ने भी इस मन्त्र को स्पष्टतया इसी कन्याओं के वेदाध्ययन के विषय में लगाया है।

उदाहरणार्थ हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के प्राचीन इतिहास के उपाध्याय डा० अतलेकर ने 'The Education in Ancient India' में स्पष्ट लिखा है कि 'No one can recite Vedic prayers or offer Vedic sacrifices without having undergone the Vedic initiation (उपनयन). It is therefore, but natural that in the early period, the Upanayan of girls should have been as common as that of boys.

There is ample evidence to show that such was the case. The Atharva Veda (11-5-18) expressly refers to maidens undergoing the Brahma Charya discipline. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् "and the Sutra works of the 5th Century B. C. supply interesting details in its connection." (Education in Ancient India by Dr. A.S. Atlekar p. 204) भावार्थ यह है कि उपनयन के बिना कोई वेद मन्त्रों का उच्चारण अथवा वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान नहीं कर सकता इस लिये यह स्वाभाविक ही है कि प्राचीन काल में कन्याओं का उपनयन भी इतना ही प्रचलित था जितना बालकों का। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि ऐसी ही बात यथार्थ है। अथर्व वेद के 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।' इत्यादि में कन्याओं के ब्रह्मचर्य पालन का

स्पष्ट विधान है और पञ्चम शताब्दि ईसा पूर्व के सूत्र ग्रन्थों में इस विषयक विस्तृत निर्देश हैं।

हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के उपाध्यक्ष डा० राधा कृष्णन् ने Religion & Society में यह तथ्य प्रकट करते हुए कि 'Girls had upanayanam performed for them and carried out the Sandhya rites." अर्थात् कन्याओं का उपनयन वा यज्ञोपवीत संस्कार होता था और वे सन्ध्या किया करती थीं 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' तथा अन्य वैदिक प्रमाण दिये हैं। गोभिल गृह्यसूत्र का 'यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन् जपेत' (२।१।१९) यह पूर्वोद्धृत स्पष्ट वचन भी उद्धृत किया है। ऐसे ही अन्य विद्वानों ने किया है। इस पर भी यदि पण्डित दीनानाथ जी जैसे अनुदार पौराणिक सज्जन जो (स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ।।' इस भागवत पुराण के वचन को मानते हैं।) ब्रह्मचर्य के अर्थ को केवल उपस्थ संयम वा वीर्य रक्षा तक सीमित करना चाहें तो यह अनुचित ही है। ब्रह्मचर्य सूक्त (अथर्व १८। ११) के अतिरिक्त स्थलों में सायणादि भाष्यकारों ने ब्रह्म का अर्थ वेद किया ही है यथा 'सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति' इस यजु० अ० ८ के मन्त्र में 'ब्रह्मणा' का अर्थ सायण 'अर्थज्ञानसहितेन वेदेन' अर्थात् अर्थ ज्ञान सहित वेद ऐसा कहते हैं।

'ब्रह्म यज्ञेन कल्पताम्' यजु० अ० १८ के भाष्य में सायण ब्रह्म का अर्थ 'वेदः' करते हैं।

'तस्मै देवा अधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः। य० १७।५२ में 'ब्रह्मणस्पतिः' का अर्थ सायण 'वैदिक कर्मणः पालको भवतु' ऐसा काण्व संहिता भाष्य में करते हैं। ऐसे ही य० १७।४५ के 'ब्रह्मसंशिते' के भाष्य में वे ब्रह्मणा—मन्त्रेण सज्जीकृते अग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञः और य० ४।११ के भाष्य में वे 'ब्रह्मशब्देन वेदत्रयमभिधीयते' ऐसा वेदपरक अथ करते हैं।

इस पर भी ब्रह्मचर्य के वेदाध्ययन रूप इस मुख्यार्थ को न मानने का कोई आग्रह करे तो इसे दुराग्रह के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस विषय में महाभारत उद्योग पर्व ४४।१७ का निम्न श्लोक उद्धृत करके हम इस प्रसङ्ग को समाप्त करते हैं। इस अध्याय में ब्रह्मचर्य की विस्तृत व्याख्या करते हुए सनत्सुजात ने धृतराष्ट्र को बताया है कि:—

धर्मादयो द्वादश यस्य रूपम् अन्यानि चाङ्गानि तथा बलं च।
आचार्ययोगे फलतीति चाहुः ब्रह्मार्थयोगेन च ब्रह्मचर्यम्॥

जिस की व्याख्या में नीलकण्ठ ने ठीक ही लिखा है कि:—

ब्रह्मार्थो वेदार्थः कर्मब्रह्मणी तयोर्योगेनाधिगमेन ब्रह्मचर्यं फलतीत्यर्थः ॥

अर्थात् वेदार्थ और वैदिक कर्म करने से ही ब्रह्मचर्य सफल होता है जिस के धर्मादि १२ रूप हैं तथा अन्य अङ्ग हैं।

इस प्रकार वैदिक काल में (जिस का तात्पर्य वेद के उद्भव का प्रारम्भिक काल ही नहीं—जैसा कि पं दीनानाथ जी ने अशुद्धि से समझ लिया है) कन्याओंका उपनयन तथा वेदाध्ययन-अध्यापन स्पष्टतया सिद्ध होता है।

रामायण काल में स्त्रियों का वेदाध्ययन, सन्ध्या हवनादि:—

वाल्मीकि रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय आर्य स्त्रियां वेदों का अध्ययन तथा वैदिक कर्म-काण्ड, सन्ध्या हवन, यज्ञादि का अनुष्ठान किया करती थीं। उदाहरणार्थ मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी की माता कौशल्या देवी जी के विषय में वर्णन मिलता है कि जब रामचन्द्र जी उन से वन में जाने के लिये अनुमति लेने गये तो वे प्रतिदिन की तरह हवन कर रही थीं। वहां उनके लिये 'मन्त्रवित्' अर्थात् वेद मन्त्रों को जानने वाली इस विशेषण का भी प्रयोग है श्लोक निम्नलिखित है:—

सा क्षौमवसना हृष्टा, नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा, मन्त्रवित्कृतमङ्गला॥

वा. रामायण २।२०।१५

अर्थात् वेद मन्त्रों को जानने वाली, व्रत परायणा, प्रसन्न चित्ता, रेशमी वस्त्रों को धारण करने वाली कौशल्या देवी मङ्गल मना कर अग्निहोत्र (हवन) कर रही थी।

पौराणिक टीकाकारों ने अत्यन्त स्पष्ट शब्द होते हुए भी यह अर्थ कर डाला है कि कौशल्या जी हवन करा रही थीं पर 'जुहोतिस्म' का अर्थ कर रही थी होता है न कि करा रही थी। पक्षपात और दुराग्रहवश उन्होंने ऐसा कर दिया है जो अमान्य है।

तारा देवी का स्वस्तिवाचनादिः—

ऐसा ही वर्णन बालि की पत्नी तारा देवी के विषय में निम्न शब्दों में बाल्मीकि रामायण में पाया जाता है:—

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी ॥

रामायण ४।१६।१२

अर्थात् तब वेद मन्त्रों को जानने वाली तारा देवी ने पति के विजय की इच्छा करते हुए स्वस्तिवाचन के मन्त्रों का पाठ करके अन्तःपुर में प्रवेश किया। यहां भी तारा देवी के लिये 'मन्त्रवित् अर्थात् वेद मन्त्रों को जानने वाली' यह विशेषण विशेष महत्त्वपूर्ण है।

सीता देवी जी का सन्ध्या हवनादि करना:—

श्री रामचन्द्र जी की आदर्श पतिव्रता धर्मपत्नी सीता देवी जी के नियम पूर्वक प्रतिदिन सन्ध्या करने आदि का

रामायण में कई स्थानों पर वर्णन मिलता है। उदाहरणार्थ अयोध्याकाण्ड सर्ग ८७।१८-१६ में लिखा है:—

लक्ष्मणेन यदानीतं पीत वारि महात्मना।
औपवास्यं तदाकार्षीद्राघवः सह सीतया॥
ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा।
वाग्यतास्ते त्रयः सन्ध्यां, समुपासन्त संहिताः॥

अर्थात् लक्ष्मण जी जब शुद्ध जल लाये तो पहले श्री रामचन्द्र जी ने, फिर सीता जी ने और तत्पश्चात् लक्ष्मण जी ने आचमनादि किया और तदनन्तर उन तीनों ने शान्त-चित्त हो कर सन्ध्योपासना की। बाल्मीकि रामायण सुन्दर काण्ड सर्ग १५ श्लोक ४८ से सीता देवी जी के प्रतिदिन नियम पूर्वक सन्ध्या करने की सूचना मिलती है जहां हनुमान् जी की निम्न लिखित उक्ति पाई जाती है:—

सन्ध्याकालमनाः श्यामा, ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां, सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥

रामायण ५।१५।४८

अर्थात् सन्ध्या काल के समय सन्ध्या करने के लिये सीता देवी इस उत्तम जल वाली नदी के तट पर अवश्य आएगी।

यहां कई पौराणिक भाष्यकारों ने सन्ध्या का अर्थ राम २ जपना अथवा सायंकालिक स्नानादि करके अपने दुराग्रह

और स्त्रियों के वेदाधिकार विरुद्ध पक्षपात का परिचय दिया है। सीता देवी जी के सन्ध्योपासनादि का बाल्मीकि रामायण के समान अन्य काव्य नाटकों में भी वर्णन पाया जाता है उदाहरणार्थ महाकवि दिङ्नागकृत 'कुन्दमाला' में निम्न वाक्य आये हैं।

सीता–निर्वर्तितं सवनम्। उपासिता सन्ध्या हुतो हुतवहः ॥ टीका–सन्ध्योपासनमपि कृतम्। अग्नि-होत्रमपि कृतम् इत्यर्थः ॥

इस पर सुप्रसिद्ध सनातन धर्माभिमानी दार्शनिक स्व० श्री पं० नृसिंह देव जी शास्त्री उपाध्याय साहित्य व दर्शन प्राच्य-महाविद्यालय लाहौर ने निम्न लिखित महत्त्व पूर्ण टिप्पणी की थीः—

नाटकादिष्वेतादृशवर्णनेन प्रतीयते यत् पुरा द्विजा-तीनां स्त्रियोऽपि सन्ध्यादिकर्माण्यकार्षुः।

अयमपि महाकवि र्महाश्वेतादीनामघमर्षणजपादिकं बाण इव सीतायाः सन्ध्योपासनमग्निहोत्रं च स्पष्टमा-ख्याति।............एवंविधवृत्तदर्शनेनान्यप्रामाणिक-ग्रन्थपाठकरणेन च स्पष्टमेव प्रतीयते यद् 'द्विजातीनां स्त्रियोऽपि वेदादिशास्त्राण्यपाठिषुः, उपनयनमपि चाप्र-पत। परं पुराणाद्यन्तर्वर्तिष्वाख्यानेषु स्मृतिग्रन्थेषु च

बाहुल्येनायमर्थो दृष्टिगोचरो न भवति । सर्वथा निर्मूलता-मपि च नात्र प्रतीमः ॥ (कुन्दमाला व्याख्या पृ०६७-६८)

अर्थात नाटकों में ऐसे वर्णनों से ज्ञात होता है कि पहले द्विजों की स्त्रियां भी सन्ध्यादि कर्म किया करती थीं। बाण ने महाश्वेता के अघमर्षण जपादि की तरह इस महा कवि ने सीता देवी के सन्ध्या, अग्निहोत्र करने का स्पष्ट वर्णन किया है। ऐसे वृत्तान्त देखने और अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के पाठ से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पहले द्विजों की स्त्रियां भी वेदादि शास्त्र पढ़तीं और उपनयन धारण करती थीं। इत्यादि

सीता देवी जी का यज्ञोपवीत धारण:—

सीता देवी जी के प्रतिदिन नियम पूर्वक सन्ध्यादि करने से भी यद्यपि स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि वे वेदाध्ययन और वैदिक कर्म काण्ड के अनुष्ठान का चिह्न यज्ञोपवीत अवश्य धारण करती होंगी। तथापि निम्न लिखित स्पष्ट प्रमाण भी इस विषय में रामायण लंका काण्ड स० ८१ में पाया जाता है—

यज्ञोपवीतमार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनी ।

यह वर्णन माया रूपिणी नकली सीता देवी के यज्ञोपवीत के मार्ग से राक्षस द्वारा काटे जाने का है। उसका समस्त आकारादि धोखा देने के लिये ठीक सीता जी जैसा बनाया गया था।

अतः सीता देवी जी का यज्ञोपवीत धारण इससे स्पष्ट सूचित होता है।

सीता देवी जी के अशोक वाटिका में हवन करने का भी रामायण के निम्न श्लोक में स्पष्ट वर्णन है:—

वैदेही शोकसन्तप्ता हुताशनमुपागमत् ॥

सुन्दर काण्ड स० ५३ । २५ ।

अर्थात् शोक से सन्तप्त सीता देवी ने तब हवन किया।

अयोध्या काण्ड सर्ग ६ में भी श्रीराम तथा सीता देवी जी के सन्ध्या और हवन करने का स्पष्ट वर्णन है। यथाः—

गते पुरोहिते रामः, स्नातो नियतमानसः ।
सह पत्न्या विशालाक्ष्या, नारायणमुपागमत् ॥
प्रगृह्य शिरसा पात्रीं, हविषो विधिवत्ततः ।
महते दैवतायाज्यम्, जुहाव ज्वलितानले ॥

अयोध्या काण्ड ६ । १-२

अर्थात् पुरोहित के चले जाने पर स्नान के पश्चात् रामचन्द्र जी ने चित्त को एकाग्र करके विशाल आँखों वाली अपनी पत्नी सीता देवी जी के साथ ईश्वर का ध्यान किया और फिर विधि पूर्वक हवन किया।

कैकेयी के लिये **मन्त्रज्ञा** इस विशेषण का अयोध्या काण्ड १४, ५६ में प्रयोग हुआ है यथाः—

तदा सुमन्त्रं मन्त्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह ॥

अर्थात् वेद मन्त्रों को जानने वाली कैकेयी ने सुमन्त्र को निम्न उत्तर दिया।

इस प्रकार रामायण काल में स्त्रियों के वेदाध्ययन तथा सन्ध्या हवनादि वैदिक कर्म काण्ड के अनुष्ठान के अनेक स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में स्त्रियों का वेदाध्ययनादि

ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन काल महाभारत के आस पास माना जाता है। ब्राह्मणों में अनेक ऐसे स्पष्ट उदाहरण पाये जाते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि उस समय आर्य देवियां वेदाध्ययन करती और वैदिक यज्ञों में भाग लेती थीं। उदाहरणार्थ शतपथ ब्राह्मण में गार्गी, मैत्रेयी आदि अनेक ब्रह्मवादिनियों का वर्णन है। मैत्रेयी के विषय में शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि 'तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव ॥'

अर्थात् याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी मैत्रेयी वेद जानने और उनका उपदेश करने वाली थी। श्री शङ्कराचार्य जी ने भी बृहदारण्यकोपनिषद् भाष्य में ब्रह्मवादिनी का अर्थ 'ब्रह्मवदनशीला' किया है। ब्रह्म का अर्थ वेद होता ही है जैसे कि अनेक प्रमाणों द्वारा प्रथम तथा इस पञ्चम अध्याय में सिद्ध किया जा

चुका है। अतः 'ब्रह्मवदनशीला' का अर्थ 'वेद करा उपदेश करने वाली यह स्पष्ट है। ब्रह्मवादिनियों के लिये उपनयन, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, गायत्री वाचन इत्यादि नियमों का विधान हारीत धर्म सूत्रादि के आधार पर पहले किया जा चुका है। यदि ब्रह्म का अर्थ परमेश्वर लिया जाय तो भी 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' इत्यादि तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा 'एतं (सर्वेश्वरं) वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' (बृहदारण्यक ४ । ४ । २२ शतपथ १४।३) इत्यादि वचनानुसार ब्रह्मज्ञान के लिये वेदाध्ययन आवश्यक है अतः उस से भी उसका वेदाध्ययनादि सिद्ध होता है।

शतपथ का० १४।७।८ अथवा बृहदारण्यकोपनिषद् के ६ष्ठ ब्राह्मण में दो स्थानों पर गार्गी वाचक्नवी नाम्नी सुप्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी का वर्णन जनक महाराज की सभा में याज्ञवल्क्य ऋषि के साथ ब्रह्म विद्या विषयक चर्चा के प्रसङ्ग में पाया जाता है जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह अपने काल में बड़ी दार्शनिक, ब्रह्मविद्या को (जिसका आधार वेदों पर था) जानने वाली ब्रह्मचारिणी थी । उसके ब्रह्मविद्या बिषयक प्रश्न इतने जटिल थे कि उस समय के सबसे बड़े ब्रह्मवेत्ता को भी यह कह कर उससे पोछा छुड़ाना पड़ा कि गार्गि मातिप्राक्षी मा ते मूर्धा व्यपप्तदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गि मातिप्राक्षीः ।"

हे गार्गि ! अधिक प्रश्न न करो। तुम ऐसे विषय में प्रश्न कर रही हो जिसके विषय में बहुत प्रश्न नहीं करने चाहियें। ऐसा न हो कि ऐसा करने से तुम्हें हानि उठानी पड़े चुप हो जाओ। यह याज्ञवल्क्य ऋषि की ओर से स्पष्ट टालमटोल प्रतीत होती है।

ब्रह्मवादिनी गार्गी की योग्यता और आत्मविश्वास इस से सूचित होते हैं कि वह दुबारा सभामण्डप में याज्ञवल्क्य ऋषि से शास्त्रार्थ करने आती है और ब्राह्मणों को नमस्कार करके कहती है कि "ब्राह्मणा भगवन्तो ! हन्ताहमिमं द्वौ प्रश्नौ प्रक्ष्यामि तौ चेन्मे वक्ष्यति न वै जातु युष्माकमिमं कश्चिद् ब्रह्मोद्यं जेतेति।" (बृहदारण्यक अ०३।८।१ शतपथ १४।८)

अर्थात् हे पूजनीय ब्राह्मणो ! मैं इस याज्ञवल्क्य ऋषि से दो प्रश्न पूछूंगी। यदि वे इन का ठीक २ उत्तर दे देंगे तो आप में से कोई भी उन को जीत न सकेगा।

इस पुस्तक के पृ० ७३ पर हम आश्वलायन गृह्य सूत्र ३।१४ को उद्धृत कर चुके हैं जहां गार्गी वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथेयी, सुलभा, मैत्रेयी की गणना न केवल ऋषिकाओं किन्तु आचार्याओं में की है जिनका लक्षण शिष्याओं का उपनयन संस्कार करा कर उन्हें कल्प अर्थात् यज्ञ विद्या प्रतिपादक ग्रन्थ और रहस्य सहित वेद पढ़ाना है जैसा कि मनु ने कहा है:—

उपनीय तु यः शिष्यं, वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च, तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

इस पर भी पं० दीनानाथ जी का कहना कि स्त्रियों के अन्दर एक धातु की कमी होती है, वे मन्त्रों का उच्चारण ठीक नहीं कर सकतीं, उन की बुद्धि कम होती है इत्यादि उन की कपोल कल्पित हीन भावनाओं और स्त्रीजाति विषक कुत्सित कल्पनाओं का उदाहरण है और कुछ नहीं।

"अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै ॥" बृहदारण्यक ६।४।१७ शत० १४।६।४

इस वचन में पण्डिता पुत्री को उत्पन्न करने के लिये जिस विशेष उपाय का वर्णन है वह भी महत्त्वपूर्ण है। 'पण्डित' के लिये आत्मज्ञान आवश्यक है जैसे कि

"आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ॥"

इत्यादि उद्योग पर्व विदुरनीति में पण्डित के लक्षणों में बताया गया है। वह आत्म-परमात्मा ज्ञान 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' इत्यादि तैत्तिरीय ब्राह्मणादिवचनानुसार वेदज्ञान के बिना नहीं हो सकता इस लिये इसमें भी वेद शास्त्राध्ययन का भाव अन्तर्हित है। स्त्रियों के लिये "विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी', "द्वारं किमेकं नरकस्य नारी', 'विज्ञान्महा-

विज्ञतमोऽस्ति को वा', नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः॥ (प्रश्नोत्तरी) इत्यादि हीन भावना रखने वाले श्री शङ्कराचार्य जी का "पाण्डित्यं गृहतन्त्रविषयं वेदेऽनधिकारात्" यह व्याख्यान ऊपर उद्धृत प्रबल प्रमाणों के विरुद्ध होने के कारण सर्वथा अमान्य है। गार्गी, सुलभा, विदुला (जिस का वर्णन आगे महाभारत प्रकरण में किया जाएगा) आदि अनेकों उदाहरणों के होते हुए महाभाष्य का 'कथं नाम स्त्री सभायां साध्वी स्यात्' यह वचन कुछ महत्त्व नहीं रखता। इस से तो अधिक से अधिक इतना ही पता लगता है कि पतञ्जलि के समय में (जो महाभारत से अर्वाचीन-अनेक विद्वानों के विचारानुसार पुष्यमित्र राजा के समय का जो ईसा से कुछ ही शताब्दि पूर्व का है) स्त्रियां सभाओं में भाषण न देती थीं। सभा का अर्थ कैय्यट का यज्ञसभा कर देना भी काल्पनिक है। जो पं० दीनानाथ जी शास्त्री आदि महाभाष्य की "स्त्री नाम कथं सभायां साध्वी स्यात्?" अर्थात् स्त्री सभामें अच्छा बोलने वाली कैसे हो इस प्रश्नात्मक साधारण सी उक्ति को इतना महत्व देते हैं कि इसके आधार पर स्त्रियोंका वेदानधिकार सिद्ध करने का दुस्साहस करते हैं यद्यपि इसका उस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं और यह गार्गी, सुलभा, विदुला, द्रौपदी, उभय-भारती इत्यादि के ऐतिहासिक उदाहरणों के भी विरुद्ध है वही महाभाष्य में पाये जाने वाले आचार्या, उपाध्याया, शात-

पथिकी, बह्वृची, कठी इत्यादि पदों से सूचित होने वाले इस स्पष्ट विषय को कैसे भूल जाते हैं कि स्त्रियां न केवल वेद और वेदाङ्गों को पढ़ सकती हैं प्रत्युत उनका अध्यापन और प्रचार भी कर सकती हैं। महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त जी शर्मा जी ने 'गोत्रं च चरणैः सह' इस सूत्र पर निम्न टिप्पणी वैय्याकरण सिद्धान्त कौमुदी में दी है। इस सूत्र का अर्थ 'अपत्यप्रत्ययान्तः शाखाध्येतृवाची च शब्दो जातिकार्यं लभत इत्यर्थः औपगवी, कठी, बह्वृची।

टिप्पणी—कठेन प्रोक्तमधीत इति वैशम्पायनान्तेवासित्वाज्जातस्य णिनेः 'कठचरकाल्लुक्, इति लुकि कठशब्दः कठप्रोक्तवेदाध्यायित्वाज्जातिकार्यं ङीषं लभते। स्त्रीणामपि पतिसमानमेव वेदाध्ययनादिष्वधिका ी चाविशेषात्' 'दर्शनाच्च' इति श्रौतसूत्रे कात्यायनः, 'जातिं तु बादरायणः तस्मात् स्त्री अपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्' इति पूर्वमीमांसायां जैमिनिः, 'काशकृत्स्नेन प्रोक्तां मीमांसामधीते काशकृत्स्नी ब्राह्मणी', 'उपेत्याधीयतेऽस्या इति उपाध्यायी उपाध्याया' इत्युदाहरणमुपन्यस्यन् भगवान् भाष्यकारश्च स्वीकरोत्येवेति भावः।"
(वैय्याकरण सिद्धान्तकौमुदी महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त शर्मा सम्पादिता वेंकटेश्वर प्रेस पृ० ८७)

यहां कात्यायन श्रौत सूत्र, पूर्व मीमांसा और महाभाष्यकार पतञ्जलि के प्रमाण दे कर पं० शिवदत्त जी ने बताया है कि ये सब स्त्रियों का भी पुरुषों के समान यज्ञाध्ययनादि का अधिकार स्वीकार करते हैं। इस लिये 'डूबते को तिनके का सहारा।' इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए पं० दीनानाथ जी का कभी यह लिख देना कि 'मन्त्र भाग तथा व्याकरण महाभाष्य कार भी स्त्री को कभी 'सभेय' नहीं मानते तब वह अविद्या सिद्ध हो गई नहीं तो उसे सभा का अधिकार तथा व्याख्यातृत्व का अधिकार क्यों न दिया जाता?' ('सिद्धान्त' आश्विन २००४ पृ० २११) और कभी "वेद 'पुमान्' वीर्यवान्, दीर्घश्मश्रु और सभेय वीर को चाहता है। कन्या इन सभी बातों से प्रत्यक्षतः तथा शास्त्रानुसार हीन है, धातुओं की अपूर्णता में वह वेद का पूर्ण उच्चारण नहीं कर सकती इस लिये वेद भी उसे अपना "पूर्ण" अधिकार नहीं देता।" (सिद्धान्त २ सित. १९४७) केवल उपहास जनक है। *केवल पुरुषों की भरी सभा में* भाषण न दे सकने से कोई अशिक्षित नहीं सिद्ध हो जाता। कई बड़े अच्छे पण्डित होते हैं जिन्हें भरी सभा में भाषण करने का अभ्यास नहीं होता इतने से ही वे अशिक्षित नहीं कहला सकते। साधारणतया स्त्रियों का गृहकार्य ही प्रधान है तथापि उसके साथ यथावकाश सामाजिक व सार्वजनिक कार्य करने का वेद में न केवल कोई निषेध नहीं बल्कि

'स्योना सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव।"
(अथर्व) इत्यादि में स्पष्ट निर्देश है कि — हे वधु! तुम सारी प्रजा का कल्याण करने वाली होओ तथा सब को उन्नत करने वाली होओ।

यज्ञ सभाओं में विदुषी स्त्रियों के जाने का तो वेद स्पष्ट शब्दों में विधान करता है कि:—

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात्"
(ऋग्वेद १० । १७ । ७)

इस मन्त्र को अर्थ सहित प्रथम अध्याय के पृ० ५ में हम उद्धृत कर चुके हैं और 'सरस्वती' के विदुषी स्त्री वाचकत्व पर भी उसी प्रसङ्ग में प्रकाश डाल चुके हैं। यहाँ यज्ञ वाचक अध्वर शब्द का प्रयोग करते हुए स्पष्ट लिखा है कि यज्ञ के अवसर पर विद्वान् विदुषी स्त्रियों को भी निमन्त्रित करते हैं।

"सिद्धान्त" चैत्र शुक्ल ३ सं० २००३ के अङ्क में शास्त्री जी ने सिर तोड़ यत्न किया है कि 'सरस्वती' का स्त्रीवाचकत्व सिद्ध न हो। अथर्ववेद ७।७१।६८।२ में "शिवा नः शन्तमा भव सुमृडीका सरस्वति। मा ते वि योम संदृशः॥" यह मन्त्र आया है जिस की व्याख्या करते हुए मैं पृ० ६ में बता चुका हूँ कि यहां विदुषी स्त्री के लिये सरस्वती शब्द का प्रयोग

हुआ है जैसा कि मानव गृह्यसूत्र (१-११-१८), वाराह गृह्यसूत्र हिन्दी टीका सहित मधुरापुर पृ० ४७, लौगाक्षि गृह्य सूत्र २५।३७ काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावलिः पृ० २७२ तथा काठक गृह्य सूत्र २५-४२ (पृ० ११३ डा० कैलेन्ड द्वारा सम्पादित) के देखने से स्पष्ट प्रमाणित होता है जहां नाम मात्र के पाठ भेद से यह मन्त्र सप्तपदी के अवसर पर प्रयुक्त किया गया है। शास्त्री जी को बाधित होकर अगत्या स्वीकार करना पड़ा कि 'मानव गृह्य सूत्र का यह (सखा सप्तपदी) मन्त्र अवश्य वहां पर सप्तपदी में है। पत्नी के ६ पांव मन्त्रों के साथ चलाने के बाद सातवाँ मन्त्र है। तब यहां पर सम्बोध्यमान तथा विशेष्य पत्नी है, सरस्वती नहीं। इस लिये यहां 'सरस्वती' यह सम्बोधन नहीं किन्तु पत्नी का विधेय विशेष्य है।" (सिद्धान्त पृ० ३८१)

अब आये शास्त्री जी कुछ २ सीधे रास्ते पर। इतना तो अब आपने स्वीकार किया कि सरस्वती यह पत्नी का विशेषण बन सकता है। मैं पूछता हूँ कि तब उस 'सरस्वती' विशेषण का अर्थ क्या होगा? सृ गतौ धातु से सरस्वती बनता है जिस गति शब्दके ज्ञान, गमन, प्राप्ति ये तीन अर्थ होते हैं। अतः सरस्वती का अर्थ ज्ञानवती यह आप को भी आगे मानना ही पड़ा है जब आप लिखते हैं कि:-'त्वं सरस्वती भव' यह पत्नी को पति का आदेश है। अब यहां 'सरस्वती' यह पत्नी का विधेय विशेषण सिद्ध हुआ। उस का अर्थ यह है कि 'सरस्वतीवद् भव' अर्थात् तू देवता सरस्वती की तरह बन।...

अथवा विशेषण होने से यहां उक्त शब्द यौगिक हुआ कि तू ज्ञानवती बन किन्तु विशेष्य में योगरूढ़िता ही रहती है।"

(सिद्धान्त पृ० ३६०)

निष्पक्षपात विद्वान् स्पष्ट देखेंगे कि शास्त्री जी को यह मानने को विवश होना पड़ा है कि सरस्वती पत्नी का विशेषण बन सकता है और पति पत्नी को आदेश देता है कि तू सरस्वती की तरह बन अथवा तू ज्ञानवती बन। यदि आप अपनी हठधर्मिता का त्याग कर दें तो इस अर्थ को मानने पर भी यह स्पष्ट भाव निकलता है कि स्त्री को सरस्वती की तरह वेदादि शास्त्र ज्ञान सम्पन्ना होना चाहिये क्योंकि उनके मन्तव्यानुसार "सरस्वती विद्याधिष्ठात्री देवता है।" वस्तुतः आपकी यह बात भी अशुद्ध है कि अथर्व वेद के मन्त्र 'शिवा नः शन्तमा भव सुमृडीका सरस्वति ॥' इस मन्त्र में 'सरस्वति' है पर आप के गृह्य सूत्र के वचन में वह सम्बोधन नहीं। जब यह सम्बोधन नहीं तब यहां पर विशेष्य भी नहीं किन्तु विशेषण है।" इत्यादि प्रथम तो जैसे आपने 'सखा सप्तपदी भव' इस पर सखा के सम्बन्ध में लिखा कि 'पुंस्त्वमार्षम्' अर्थात् यहां पुंलिंग का प्रयोग आर्ष है वैसे 'सरस्वति' के स्थान में सरस्वती यह मानव गृह्य सूत्र के वचन में भी माना ही जा सकता है पर लौगाक्षि गृह्य सूत्र और काठक गृह्य सूत्र में तो पाठ ही 'सखा सप्तपदी भव सुमृडीका सरस्वति ।' यही सम्बोधनान्त ही

है इसका शास्त्री जी को ज्ञान नहीं । इस से आपका किया कराया सारा परिश्रम जो खैंचातानी से इतना भरपूर था कि स्वयं 'सरस्वती की तरह ज्ञानवती बन' इतना लिख कर भी फिर ज्ञानवती के बाद कोष्ठक में (समझदार) ऐसा लिख बैठे हैं जिससे आपके दुराग्रह का प्रमाण स्पष्ट मिलता है। 'योषा वै सरस्वती' यह शतपथ २ । ५ । । १११ का प्रमाण सरस्वती के विदुषी स्त्रीवाचकत्व सिद्ध करने के लिये [विदुषी इस लिये कि सरस्वती शब्द का ही वह धात्वर्थ है इस लिये हम पर विदुषी शब्द को प्रक्षिप्त करने का आप का आरोप सर्वथा निस्सार है) अत्यन्त प्रबल है। सार हीन होने के कारण शास्त्री जी की छोटी मोटी बातों की विवेचना करना हमें सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होता है।

अब हम तैत्तिरीय ब्राह्मण में से स्त्रियों के वेदाधिकारादि विषयक दो तीन स्पष्ट प्रमाण उद्धृत करते हैं:—

तैत्तिरीय ब्राह्मण २ । ३ । १० में जिसका प्रारम्भ "प्रजापतिः सोमं राजानमसृजत तं त्रयो वेदा अन्वसृज्यन्त अथ ह सीता सावित्री सोमं राजानं चकमे ॥ इस प्रकार होता है अन्त में लिखा है कि 'तस्या उ ह त्रीन् वेदान् प्रददौ ।" अर्थात् सोम ने सीता सावित्री को तीन वेद दिये। बड़ आश्चर्य और खेद की बात है कि सायणादि पौराणिक भाष्यकारों ने 'तस्या उ ह त्रीन् वेदान् प्रददौ ।' जैसे स्पष्ट शब्दों

के होते हुए भी उनका 'वेदमन्त्रलाञ्छितं किञ्चिद् गुटिका-द्रव्यं दत्तवान् इत्यर्थः'' ऐसा कर दिया है कि वेद मन्त्रों से चिन्हित कोई अंगूठी आदि देदी।

'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां, त्रयी न श्रुतिगोचरा।'

(भागवत)

अर्थात् स्त्रियों, शूद्रों और नीच ब्राह्मणों को वेद सुनने का अधिकार नहीं इस पौराणिक भावना के वशीभूत होकर इन भाष्यकारों ने कहीं २ अर्थ का अनर्थ कर दिया यह स्पष्ट प्रतीत होता है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।४ में इड़ा का वर्णन इन शब्दों में पाया जाता है कि 'इड़ा वै मानवी यज्ञानूकाशिन्यासीत्' यहां 'यज्ञानूकाशिनी' यह शब्द विशेष महत्त्व पूर्ण है, जिसका अथ सायणाचार्य जी ने 'यज्ञतत्त्वप्रकाशनसमर्था' अर्थात् यज्ञ के तत्त्व को प्रकाशित करने में समर्थ' ऐसा किया है। यहां 'मानवी इड़ा' इन शब्दों का स्पष्ट अर्थ यह प्रतीत होता है कि मनु की पुत्री इड़ा, किन्तु श्री सायणाचार्य ने अपने भाष्य में इड़ा का अर्थ 'इड़ा नाम गोरूपा काचिद् देवता' ऐसा लिख दिया है। उस इड़ा का मनु के साथ संवाद और यज्ञ विषयक कई आवश्यक निर्देश देने का निम्न शब्दों में वर्णन है:—

'साऽब्रवीदिड़ा मनुम् । तथा वा ऽहं तवाग्नि-माधास्यामि यथा प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जनिष्यसे। प्रत्यस्मिँल्लोके स्थास्यसि । अभि सुवर्गं लोकं जेष्यसीति ॥ तैत्ति० ब्रा० का० प्र० १ अनु० ४ आनन्दाश्रम पूना संस्करण पृ० २६)

अर्थात् इड़ा ने मनु से कहा कि मैं तुम्हारी अग्नि का ऐसा आधान करूंगी जिससे तुम्हें उत्तम सन्तान, पशु इत्यादि की प्राप्ति हो। इस लोक में तुम्हारी प्रतिष्ठा हो तथा तुम्हें स्वर्ग लोक पर विजय प्राप्त हो। किसी गाय का इस प्रकार का वचन कितना असङ्गत प्रतीत होता है। वस्तुतः किसी सुशिक्षिता यज्ञविद्यानिष्णाता महिला का यह वचन होगा जो यज्ञ कराने में प्रसिद्ध थी जैसे कि 'यज्ञानूकाशिनी' इस विशेषण से भी स्पष्ट है। विदुषी स्त्रियों का पौरोहित्याधिकार इस आख्यान से सिद्ध होता है। यदि सायणाचार्यकृत व्याख्यान को भी मान लिया जाए (जो प्रकृति नियम विरुद्ध होने से माननीय नहीं) तो गौ का भी यज्ञ विषयक उपदेश का अधिकार सिद्ध होता है तो स्त्रियों की तो बात ही क्या है!

ताण्ड्य और गोपथ ब्राह्मण की इस विषयक साक्षी:—

इस पुस्तक के २य अध्याय में हमने ऐतरेय, शतपथ तथा तैत्तिरीय संहिता के प्रमाण स्त्रियों के वेदाधिकारादि

विषयक दिये थे। सामवेद के ताण्ड्य महा ब्राह्मण और अथर्व वेद के गोपथ ब्राह्मण के प्रमाणों का उस में उल्लेख न किया जा सका था। महत्त्व पूर्ण होने से उसे संक्षेप से यहां देना उचित प्रतीत होता है।

ताण्ड्य महाब्राह्मण में स्त्रियों के यज्ञों में न केवल सम्मिलित होने और मन्त्रोच्चारण करने बल्कि वीणादि के साथ साम गान करने और आर्त्विज्य (ऋत्विक् कार्य) कराने का ५।६।८ में वर्णन है।

'तं पत्न्योऽपघाटिलाभिरुपगायन्ति आर्त्विज्यमेव तत् पत्न्यः कुर्वन्ति सह स्वर्गं लोकमयामेति' ये शब्द उपर्युक्त भाव के सूचक हैं।

न केवल पत्नियों का प्रत्युत यजमान की सेविकाओं तक का मन्त्रपाठका अधिकार ताण्ड्य महाब्राह्मण के निम्न वाक्यों में सूचित किया गया है:—

अथ यजमानप्रेष्याः स्त्रिय उदकुम्भं धारयन्त्यो नयेयुरिति विधत्ते परि कुम्भिन्यो मार्जालीयं यन्ति इदं मधु इदं मधु इदं मध्विति सघोषा एव तद् वयो भूत्वा सह स्वर्गं लोकं यन्ति। ताड्य ब्राह्मण ५-६-१५

सायणभाष्यम्—इदं मध्विद मध्विदं मध्वितिमन्त्रं शंसन्त्यः पुनः पुनर्गायन्त्यः कुम्भिन्यः दास्यः मार्जालीयं धिष्ण्यं परियन्ति॥ इत्यादि

अर्थात् यजमान की दासियां घड़ा उठाये हुए "इदं मधु इदं मधु इदं मधु" इस मन्त्र का बार २ गान करती हुई परिक्रमा करती हैं। इस प्रकार न केवल द्विजों की स्त्रियों का बल्कि दासियों तक का वेदाधिकार प्रमाणित होता है। गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग प्रपाठक ५ कण्डिका २४ का दीक्षिता पत्नी विषयक निम्न वचन विशेष उल्लेखनीय है।

यज्ञ में ऋत्विगादि की गणना करते हुए वहां लिखा है:—

अष्टादशी दीक्षिती दीक्षितानां
यज्ञपत्नी श्रद्दधानेहयुक्ता ।
एकोनविंशः शमिता बभूव
विंशो यज्ञे गृहपतिरेव सुन्वन् ॥१४॥
एकविंशतिरेवैषां, संस्थायोमङ्गिरो वह ।
वेदैरभिष्टुतो लोको, नानावेशापराजितः ॥

(गोपथ ५-२४-१४-१५)

जिसका अर्थ श्री क्षेमकरण जी त्रिवेदी ने अपने आर्य-भाषानुवाद में ठीक ही दिया है, कि दीक्षित पुरुषों में अठाहरवीं दीक्षा पाई हुई सत्य धारण करती हुई योग्य पत्नी (यजमान की स्त्री) इस यज्ञ में होती है। दीक्षिती—प्राप्तदीक्षा पृ. ३०६ ।"

क्या विना उपनयन और यज्ञोपवीत धारण के कोई दीक्षिता बन सकती है ?

जब सायणाचार्य द्वारा "वि त्वा ततस्रे अवस्थवः। [ऋग् अष्टक १ व० १६ मं० ३] के भाष्य में उद्धृत "जायापती अग्निम् आदधीयाताम्" इस ब्राह्मण ग्रन्थोक्त विधान के अनुसार पतिपत्नी दोनों मिलकर अग्न्याधान करते हैं जैसे कि पूर्व मीमांसा के २. १३

उपनयन्नादधीत होमसंयोगात् ॥११॥ स्थपतीष्टिवल्लौकिके वा विद्याकर्मानुपूर्वत्वात् ॥१२॥ आधानं च भार्यासंयुक्तम् ॥१३॥ मीमांसा अ. ६. पा. ८. अधि. २

इन सूत्रों से भी स्पष्ट है। तो क्या विना उपनयन के स्त्री अग्न्याधानादि वैदिक कर्म की अधिकारिणी होती है? सू. ११. से स्पष्ट है कि अग्न्याधान का अधिकार उपनयन के पश्चात् ही होता है।

इसके द्वितीय अधिकरण में—

"आधानं विदुषो विद्याऽनुपनीतस्य नास्त्यतः।
न सम्भवो वैदिकाग्नेर्होमोऽग्नौ लौकिके ततः॥

(जैमिनीय न्यायमाला पृ. ३६६) जिसकी व्याख्या में माधवाचार्य ने—विद्वानेव हि आधानेऽधिकारी न च अनुपनीतस्य विद्यास्ति तत आहवनीयासम्भवाल्लौकिकेऽग्नावुपनयनहोमः कर्तव्यः।" लिखा है यह भी देखने योग्य है जिसमें बताया है कि विद्वान् ही अग्न्याधान का अधिकारी

है और जो उपनीत नहीं है उसे विद्या नहीं प्राप्त हो सकती। इस प्रकार स्त्रियों का उपनयन स्पष्टतया सूचित होता है जिस के विरुद्ध शबर स्वामी अथवा माधव के कहीं २ पाये जाने वाले लेख सर्वथा अमान्य हैं।

"तस्या यावदुक्तमाशीर्ब्रह्मचर्यमतुल्यत्वात् ।"

इस मीमांसा सूत्र का पौराणिक कुसंस्कारवश अनर्थ कर के शबरस्वामी तथा माधवाचार्य ने जो यह लिख दिया कि "यजमानत्वस्योभयोः समानत्वात्ततो यजमानत्वसमाख्या यथा पुंसानुष्ठीयते तथा स्त्रियापि। इति चेत् मैवम्। अध्ययनरहितया स्त्रिया तदनुष्ठातुमशक्यत्वात्। तस्मात् पुंस एवोपस्थानादिकम्। अर्थात् स्त्री के अध्ययनरहिता (अशिक्षिता) होने के कारण वह यज्ञ में मन्त्रोच्चारणादि नहीं कर सकती इस लिये केवल पुरुष ही मन्त्रोच्चारणादि करे। इस पर महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त जी शर्मा ने टिप्पणी में ठीक ही लिखा कि "इदं च य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियात् इति बृहदारण्यकोपान्त्यश्रुतिविरुद्धम् (जैमिनीयन्यायमाला पृ. ३०६)।

यह लेख बृहदारण्यकोपनिषदादि के विरुद्ध है।

सिद्धान्त कौमुदी की टिप्पणी में पं० शिवदत्त जी ने और भी स्पष्ट शब्दों में लिखा:—

"स्त्रीणां 'जातिं तु बादरायणोऽविशेषात् तस्मात् स्त्र्यपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्', "फलोत्साहाविशेषात्', 'अर्थेन च समवेतत्वात्', 'फलार्थित्वात्त स्वामित्वेनाभिसम्बन्धः' (मीमांसा ६।१।८-२०) इत्यादिसूत्रैर्वैदिके कर्मणि पुंस इवाधिकारो वर्णितः। 'तस्या यावदुक्तमाशीर्ब्रह्मचर्यमतुल्यत्वात्' (मी. ६।२।२४) इति सूत्रेऽतुल्यत्वं न विद्याऽभावेन किन्तु राजसंनिधानेऽमात्यस्येव गुरुसन्निधाने शिष्यस्येव पतिसन्निधानेऽस्वातन्त्र्यरूपाप्राधान्येनैव ।......आर्षग्रन्थेषु तु न क्वापि स्त्रीणामध्ययनाभाव उपलभ्यते प्रत्युत काशकृत्स्निना प्रोक्तां मीमांसामधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणी, इत्युदाहरणेन सूचितस्य मीमांसाध्ययनस्य 'इङश्चेत्यपादाने स्त्रियामुपसंख्यानं तदन्ताच्च वा ङीष् (३।३।२१ सू.) इति वार्तिकस्य 'उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी उपाध्याया' इत्युदाहरणेन सूचितस्य वेदैकदेशाध्यापनस्य 'कथं हि स्त्री नाम सभायां साध्वी स्यात्' इति ग्रन्थेन स्त्रीणां सभागमनस्यैव निन्दाया असूचनात् स्वसम्मतत्वमेव दर्शितम् ।......गृह्यसूत्रेषु कुमारपदमपि जातिपरमेव। अत एव 'कुमारा विशिखा

इव' इति श्रुतिसूचितं चौलकर्म कुमारीणामपि स्वीकृतम् ॥"

इस महत्त्वपूर्ण लेख में महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त जी ने मीमांसा सूत्रों को उद्धृत करते हुए बताया है कि वैदिक कर्म में स्त्रियों का भी पुरुषों के समान अधिकार है। 'तस्या यावदुक्तमाशीर्ब्रह्मचर्यमतुल्यत्वात्' इस सूत्र में जो स्त्री की पुरुष से अतुल्यता कही गई है वह विद्या के अभाव के कारण नहीं किन्तु जैसे राजा की उपस्थिति में मन्त्री की, गुरु की उपस्थिति में शिष्य की, वैसे ही पति की उपस्थिति में स्त्री की अप्रधानता वा अस्वतन्त्रता के कारण है। आर्ष ग्रन्थों में तो कहीं भी स्त्रियों के लिये अध्ययन का निषेध नहीं किन्तु काशकृत्स्नी ब्राह्मणी, उपाध्याया आदि से सिद्ध होता है कि महाभाष्यकार को भी यह सम्मत है केवल स्त्रियों के पुरुषों की भरी सभा में जाने मात्र की निन्दा उन्होंने सूचित की है।

गृह्य सूत्रों में संस्कारों में जहां २ कुमार पद है वह जातिपरक है अतः कुमारियों का भी ग्रहण है इसी लिये 'कुमारा विशिखा इव' इस वेद मन्त्र में 'कुमाराः' यह पुंल्लिङ्गान्त प्रयोग होने पर भी कुमारियों का चौल कर्म (चूड़ाकर्म संस्कार) किया जाता है।

यह लेख अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है और इस में पं० दीनानाथ जी की सब शङ्काओं का मुंह तोड़ उत्तर है। आशा है शास्त्री जी कट्टर सनातनधर्माभिमानी महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त-

जी को मूर्ख अथवा जनता को धोखा देने वाला यह कहने की धृष्टता न करेंगे और उन के इन युक्तियुक्त सप्रमाण लेखों की सत्यता को स्वीकार करके अपने दुराग्रह का परित्याग करेंगे।

मैत्रायणी और काठक संहिता की साक्षी:—

इस पुस्तक के २य अध्याय में ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रकरण में तैत्तिरीय संहितादि के कुछ प्रमाण स्त्रियोंके वेदाध्ययनादि विषयक उद्धृत किये जा चुके हैं। उनके अतिरिक्त भी अनेक हैं। पर विस्तारभय से उन सबको यहां दिया जाना सम्भव और आवश्यक नहीं प्रतीत होता। वेद की शाखाओं में से मैत्रायणी संहिता और काठक संहिता भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं जिसको पं० दीनानाथ जी शास्त्री जैसे पौराणिक सज्जन तो साक्षात् वेद ही मानते हैं अतः इस प्रसङ्ग में उनके भी दो एक उद्धरण देना अनुचित न होगा।

त्रायणी संहिता १।४।३।२७ में कहा है कि:-

सं पत्नी पत्या सुकृतेषु गच्छतां यज्ञस्य युक्तौ धुर्या अभूताम्। आपृणानौ विजहता अरातिं दिवि ज्योतिरुत्तममारभेथां स्वाहा॥ पत्नि पत्नि एष ते लोको नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीर्या सरस्वती वेशयमनी तस्यै स्वाहा॥

[मैत्रायणी १।४।३। २८ यजमान ब्राह्मणम्]

इन शब्दों की व्याख्या वहां स्वयं करते हुए कहा है कि

स पत्नी पत्या सुकृतेषु गच्छताम् इत्येष वै पत्न्या यज्ञस्यान्वारम्भः। सह स्वर्गे लोके भवतः। या वा एतस्य-पत्नी सैतं सम्प्रति पश्चादन्वास्ते। (स्वाध्याय मण्डल सं० पृ० ३९)

अर्थात् पत्नी का कर्तव्य है कि वह सब उत्तम कार्यों में पति के साथ चले। उसको सहायता देने वाली हो। पति पत्नी दोनों यज्ञ की धुरा के उठाने वाले हों! दोनों कामक्रोधादि शत्रुओं का नाश करते हुए उत्तम ज्ञान ज्योति को अपने अन्दर जगाएं।

हे पत्नि! हे पत्नि! यह तुम्हारा घर है। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम मेरी कभी हिंसा न करना। तुम संयत वेश रखने वाली सरस्वती (ज्ञानवती) मेरी पत्नी हो तुम्हारे लिये मैं सदा उत्तम वचन बोलूंगा। इत्यादि

इन वाक्यों से पत्नी का पति के समान वेदाध्ययनादि करके उसके सब शुभ कार्यों में सहायता देना, यज्ञ में उसको पूर्ण सहयोग देना तथा पतिका उसके प्रति आदर का भाव रखना (न कि उसे दासीवत् तथा अनृतस्वरूपिणी, अशुभा, अनिन्द्रिया मान कर तिरस्कार करना जैसे कि पं० दीनानाथ जी जैसे पौराणिक पण्डितों के लेखों में स्थान२ पर स्पष्टतया ध्वनित होता है और जिस स्त्री की शूद्रातुल्यता शास्त्रानुकूल सिद्ध करने में उन्हें लज्जा नहीं आती) ये उत्तम भाव सूचित होते हैं। साथ ही विदुषी स्त्री के लिये 'सरस्वती' शब्द का प्रयोग भी यहां स्पष्ट है।

'संपत्नी पत्या सुकृतेषु गच्छतां यज्ञस्य युक्तौ धुर्या अभूताम्। आ प्रीणानौ विजहता अरातिं दिवे ज्योतिरुत्तममारभेथाम् ॥ २२ ॥ वेदो ऽसि वित्तिरसि वेदसे त्वा वेदो मे विन्द विदेय ॥ २३ ॥ घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणम्। वेदो वाजं ददातु मे वेदो वीरं ददातु मे ॥२४॥ वृषा वृषण्वतीभ्यो वेद पत्नीभ्यो भव ॥ २५ ॥

(काठक संहिता यजमान प्रकरणम्) ५।४ स्वाध्यायमण्डल सं० पृ० ३४-३५

ये वाक्य काठक संहिता में पाये जाते हैं जो बड़े महत्त्व पूर्ण हैं। 'सं पत्नी प्रजया सुकृतेषु गच्छताम्' का अर्थ ऊपर मैत्रायणी संहिता के वाक्य के समान है कि पत्नी सब अच्छे कार्यों में पति के साथ चले। दोनों मिलकर यज्ञ को करने वाले हों। दोनो उत्तम ज्ञान ज्योति को अन्दर जगाना प्रारम्भ करें।

पत्नी की उक्तिः—

तू वेद है, तू सब उत्तम गुणों और ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाला है। मैं तुझे अच्छी प्रकार से ज्ञान के लाभ के लिये प्राप्त करू'। वेद मुझे तेजोयुक्त, उत्तम कुल बनाने वाला, ऐश्वर्य का पोषक सहस्रों का पालन करने वाला ज्ञान दे, वेद मुझे उत्तमवीर सन्तान दे। हे वेद ! तू वीर्य की कामना करने वाली पत्नियों के लिये बलदायक बन।

ये मन्त्र जो स्त्रियों के मुख से वेद को सम्बोधन कर के अथवा उसके विषय में बुलवाये गये हैं स्पष्टतया स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिकयज्ञों में पूर्ण भाग लेने का प्रबल समर्थन करते हैं इस में किसी निष्पक्षपात विद्वान् को कोई सन्देह नहीं हो सकता।

महाभारत की साक्षीः—

महाभारत में अपने से प्राचीन काल के तथा अपने समय के अनेक उदाहरण स्त्रियों के वेदाध्ययन और वैदिक-कर्म काण्ड में भाग लेने के पाये जाते हैं जिनमें से विस्तार भय से केवल निम्न लिखित का उल्लेख ही पर्याप्त है।

सर्ववेदविशारदा शिवाः—

महाभारत उद्योग पर्व अ० १०६। १८ में शिवा नाम की एक ब्राह्मणी का वर्णन निम्न शब्दों में पाया जाता हैः—

अत्र सिद्धा शिवा नाम, ब्राह्मणी वेदपारगा।
अधीत्य सकलान् वेदान्, लेभेऽसन्देहमक्षयम् ॥

अर्थात् शिवा ब्राह्मणी वेदों में पारंगता थी। उसने सब वेदों को पढ़ कर सन्देह रहित मोक्ष-पद को प्राप्त किया।

सिद्ध ब्रह्मचारिणीः—

महाभारत शल्य पर्व ५४। ६ में सिद्धा नाम की ब्राह्मणी का वर्णन निम्न शब्दों में हैः—

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा, कौमार ब्रह्मचारिणी।
योगयुक्ता दिवं याता, तपःसिद्धा तपस्विनी।

अर्थात् योग सिद्धि को प्राप्त, कुमारावस्था से ही वेदाध्ययन करने वाली तपस्विनी सिद्धा नाम की ब्राह्मणी (वेद विदुषी) तप का पूर्णतया अनुष्ठान करके मोक्ष को प्राप्त हुई।

यहां ब्रह्मचारिणी और ब्राह्मणी दोनों शब्दों से सिद्धा का वेदज्ञान सूचित होता है। 'तपः' का अर्थ "स्वाध्याय प्रवचने एव तपः" ऐसा तैत्ति० उपनिषद् में दिया ही है।

श्रीमती ब्रह्मचारिणीः—

बभूव श्रीमती राजन्, शाण्डिल्यस्य महात्मनः।
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी॥
सा तु तप्त्वा तपो घोरं, दुश्चरं स्त्रीजनेन ह।
गता स्वर्गं महाभागा, देवब्राह्मणपूजिता॥

शल्य पर्व ५४। ६

अर्थात् महात्मा शाण्डिल्य की सुपुत्री श्रीमती थी जिसने सत्य, अहिंसा ब्रह्मचर्यादि व्रतों को पूर्णतया धारण किया हुआ था और जो वेदाध्ययन में दिन रात तत्पर थी। अत्यन्त कठिन तप को करके और बड़े उच्चकोटि के सत्यनिष्ठ ब्राह्मणों द्वारा भी पूजित होकर वह मोक्षधाम सिधारी।

श्रुतावती ब्रह्मचारिणीः—

शल्यपर्व अ० ४८ में भरद्वाज की विदुषी पुत्री श्रुतावती का वर्णन निम्न शब्दों में पाया जाता हैः—

भरद्वाजस्य दुहिता, रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
श्रुतावती नाम विभो, कुमारी ब्रह्मचारिणी ॥
शल्य पर्व अ० ४८ । २

अर्थात् भरद्वाज की श्रुतावती नाम वाली कुमारी थी जो ब्रह्मचारिणी अर्थात ब्रह्म-वेद का अच्छी प्रकार अध्ययन करने वाली थी । यदि कन्या के लिये 'ब्रह्मचारिणी' विशेषण के प्रयोग का केवल इतना ही तात्पर्य है कि वह उपस्थनिग्रहादियुक्ता है तो वह काम 'कुमारी' से चल सकता था अतः उसका अर्थ वेदाध्ययन करने वाली है जैसे कि प्रथम अध्याय में सप्रमाण बताया जा चुका है ।

सुलभा ब्रह्मवादिनीः—

महा भारत शान्ति पर्व अ० ३२० में सुलभा नाम की ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी का वर्णन और उसके जनक महाराज के साथ शास्त्रार्थ का वृत्तान्त पाया जाता है जिसने अपना परिचय जनक महाराज को इन शब्दों में दिया है कि:-

प्रधानो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः ।
कुले तस्य समुत्पन्नां, सुलभां नाम विद्धि माम् ॥
साहं तस्मिन् कुले जाता, भर्तर्यसति मद्विधे ।
विनीता मोक्षधर्मेषु, चराम्येका मुनिव्रतम् ॥
शान्ति पर्व अ० ३२० । ८२

अर्थात् मैं सुप्रसिद्ध राजर्षि के कुल में उत्पन्न सुलभा हूँ। अपने योग्य पति न मिलने से मैंने गुरुओं से वेदादि शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके संन्यासाश्रम ग्रहण कर लिया है।

नील कण्ठ ने भाव-प्रदीप में इस ३२० । ८३ की बड़ी उत्तम टीका की है जो उल्लेखनीय है कि:—

तस्मिन् विख्यातप्रभवे कुले विनीता गुरुभिः शिक्षिता मद्विधे भर्तर्यसति-अप्राप्ते सति नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यमेवाश्रित्य संन्यासं कृतवत्यस्मीत्यर्थः ॥

(महाभारत शान्तिपर्व—रामचन्द्र शास्त्रिसम्पादित पृ० ६६५)

इस का भावार्थ ऊपर दे दिया गया है। सुलभा का जो शास्त्रार्थ जनक महाराज से महाभारत में वर्णित है उस से उस की वेदादि विषयक विद्वत्ता और योग्यता का अच्छा परिचय मिलता है। उस की वेदादि विषयक विद्वत्ता को देख कर उस की गणना आचार्याओं में की गई थी जैसे कि आश्वलायन गृह्यसूत्र के प्रमाण से पृ० ७३ में दिखाया जा चुका है। उस से यह भी स्पष्ट होता है कि सुलभा देवी केवल वेदों की विदुषी ही न थी वह वेदों का अध्यापन भी कराती थी।

पण्डिता द्रौपदी देवी:—

द्रौपदी देवी अपने समय की बड़ी प्रसिद्ध पण्डिता थी। उसके लिये पण्डिता शब्द का महाभारत में अनेक स्थानों पर प्रयोग आया है।

प्रिया च दर्शनीया च, पण्डिता च पतिव्रता ।
अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनमब्रवीत् ॥ वनपर्व २७।२

पण्डितों के जो लक्षण विदुरनीति आदि में बताये गये हैं उन में से सब से प्रथम 'आत्मज्ञान' है जैसे कि पहले श्लोक उद्धृत करके बताया जा चुका है। आत्मा और ब्रह्म विषयक ज्ञान 'नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्' (तैत्तिरीय ब्राह्मण) के अनुसार या स्वयम् ऋग्वेद की 'यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति । यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ (ऋ० १०।७१।८) इस श्रुति के अनुसार वेद पढ़े बिना सुकृत अथवा धर्म के मार्ग का ज्ञान नहीं हो सकता इस लिये यह स्पष्ट है कि द्रौपदी देवी ने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया था।

कुन्ती ने अपनी पुत्रवधू द्रौपदी देवी के लिये
'सर्वधर्म-विशेषज्ञां, स्नुषां पाण्डोर्महात्मनः ।
ब्रूया माधव कल्याणीं, कृष्ण कृष्णां यशस्विनीम् ॥
उद्योग पर्व १३७।१२

श्री कृष्ण के सामने 'सर्वधर्मविशेषज्ञा' इस विशेषण का प्रयोग किया है जो वेद शास्त्राध्ययन किये बिना सर्वथा असम्भव है।

इसी लिये श्री आचार्य आनन्द तीर्थ जी (श्री मध्वाचार्य) ने 'महाभारत तात्पर्य निर्णय' में स्पष्ट लिखा कि:—

वेदाश्चाप्युत्तमस्त्रीभिः, कृष्णाद्याभिरिहाखिलाः ॥

अर्थात् उत्तम स्त्रियों को कृष्णा (द्रौपदी देवी) आदि की तरह सब वेद पढ़ने चाहियें।

राजपरिषदों में प्रसिद्धा विदुलाः—

महाभारत उद्योगपर्व अ० १३३ से १३६ तक विदुला नाम की एक बड़ी वीरता सम्पन्ना विदुषी देवी का संजय नामक पुत्र के प्रति ओजस्वी उपदेश है। उस विदुला के विषय में लिखा है किः—

क्षत्रधर्मरता दान्ता, विदुला दीर्घदर्शिनी। विश्रुता राजसंसत्सु, श्रुतवाक्या बहुश्रुता ॥ उद्योगपर्व १३३।२

यहां 'विश्रुता राजसंसत्सु' यह विशेषण विशेष महत्त्वपूर्ण है जिस का अर्थ है कि वह न केवल विदुषी थी [जैसे कि उसके मृतकों में भी नव जीवन का संचार करने वाले उपदेशों से स्पष्ट प्रतीत होता है] बल्कि राजसभाओं में भी वह प्रसिद्धा थी और उस की बातों को वहां ध्यान से सुना जाता था। पं० दीनानाथ जी शास्त्री की प्रिय 'कथं नाम स्त्री सभायां साध्वी स्यात्' इस उक्ति का ऐसे उदाहरणों से स्पष्ट खण्डन होता है और उन द्वारा समर्थित पर्दा पद्धति का भी। वस्तुतः ऐसी विदुषी वीरा महिलाओं के कारण ही आर्यावर्त की इतनी उज्ज्वल कीर्ति रही है। उस विदुषी देवी ने अपने विषय में बताया है किः—

अहं महाकुले जाता, ह्रदाद् ह्रदमिवागता। ईश्वरी सर्व-कन्याणी, भर्त्रा परमपूजिता ॥ (उद्योगपर्व १३४।१४)

अर्थात् मैं बड़े उच्च कुल में उत्पन्न हुई और बड़े योग्य वर से मेरा विवाह हुआ। मेरे पतिदेव मेरी बड़ी पूजा करते थे।

पं० दीनानाथ जी तो इन शब्दों को पढ़ कर चौंक उठेंगे किन्तु यही 'शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमाः" इन वैदिक आदेशों का तात्पर्य है जिन को जलपरक मान कर शास्त्री जी भ्रम में पड़े हैं जब कि वह जलके समान शान्ति-शीला विदुषियों के विषय में है। विस्तार भय से इस प्रकरण को यहीं समाप्त किया जाता है।

पुराणों में स्त्रियों के वेदाध्ययनादि के उदाहरण:—

पुराणों में भी इस बात के बड़े स्पष्ट अनेक उदाहरण पाये जाते हैं जिन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में स्त्रियां वेदों का अध्ययन करती करातीं तथा वैदिक यज्ञों में सक्रिय भाग लेती थीं। अनेक ऐसी ब्रह्मवादिनियों का भी पुराणों में वर्णन पाया जाता है जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य धारण कर के वेदों के पढ़ने पढ़ाने और योगाभ्यास में अपने पवित्र जीवन को लगा दिया था। निम्न लिखित कुछ उदाहरण इस विषय में विशेष उल्लेखनीय हैं:—

भागवत पुराण में वर्णित ब्रह्मवादिनियां:—

वैष्णवों के परम मान्य भागवत पुराण के स्कन्ध

४ अ० १ में वयुना और धारिणी नामक ब्रह्मवादिनियों का वर्णन निम्न श्लोक द्वारा किया गया है:—

तेभ्यो दधार कन्ये द्वे, वयुनां धारिणीं स्वधा ।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ, ज्ञानविज्ञानपारगे ॥
भागवत ४ । १ । ६४

अर्थात् स्वधा को दो पुत्रियां हुईं जिन के नाम वयुना और धारिणी थे। वे दोनों ज्ञान और विज्ञान में पूर्ण पारंगता तथा ब्रह्मवादिनी अर्थात् ब्रह्म वेद और परमेश्वर विषयक उपदेश करने वाली थीं।

विष्णु पुराण में ब्रह्मवादिनियांः—

विष्णु पुराण अंश १ अध्याय १० में भी ब्रह्मवादिनियों का वर्णन निम्न श्लोक द्वारा पाया जाता है:—

तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे, मेनां वै धारिणीं तथा ।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ, योगिन्यौ चाप्युभे द्विज ॥
उत्तम ज्ञानसम्पन्ने, सर्वैः समुदितैर्गुणैः ॥
विष्णु पुराण १ । १० । १८-१६

अर्थात् स्वधा की मेना और धारिणी नाम की दो पुत्रियां थीं । वे दोनों उत्तम ज्ञान और सब गुणों से युक्ता, योगिनी और ब्रह्मवादिनी-वेद और परमेश्वर विषयक उपदेश देने वाली थीं।

मार्कण्डेय पुराण में ब्रह्मवादिनियांः—

मार्कण्डेय पुराण अ० ५२ में भी ठीक यही विष्णु पुराण वाले श्लोक आये हैं जिन में ब्रह्मवादिनियों का वर्णन है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में चतुर्वेद विशारदा वेदवती का वर्णनः—

ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड अ० १४ में कुशध्वज की पुत्री कमलाशा का वर्णन है जिसको चारों वेदों के अर्थ-सहित पूर्ण ज्ञान के कारण लोग वेदवती के नाम से पुकारते थे। उस के विषय में इस पुराण में लिखा है किः—

सततं मूर्तिमन्तश्च, वेदाश्चत्वार एव च ।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे, सा च वेदवती स्मृता ॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड १४ । ६५

अर्थात् क्यों कि चारों वेद उस को जिह्वाग्रवा कण्ठस्थ थे इस लिये उसे वेदवती नाम से पुकारा जाता था । पुराणानुसार इसी वेदवती ने सीता देवी के रूप में जन्म लिया।

शिव पुराण में पार्वती का यज्ञोपवीतः—

शिव पुराण रुद्र संहिता पार्वती खण्ड अ० ४७ में दुर्गा देवी के यज्ञोपवीत का वर्णन इन शब्दों में पाया जाता हैः—

ततः शैलवरः सो ऽपि, प्रीत्या दुर्गोपवीतकम् ।
कारयामास सोत्साहं, वेदमन्त्रैः शिवस्य च ॥

इस का अर्थ श्री शिव पुराण (श्री १०८ ब्रह्मचारी इन्द्र जी महाराज कृत टीका मथुरा संस्करण पृ० ५०१) में निम्न प्रकार दिया है:—

"तब शैल राज ने प्रीति पूर्वक वेद मन्त्रों से शंकर और पार्वती का यज्ञोपवीत संस्कार कराया।"

पार्वती देवी का पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार करवानाः—

ततो घृतस्नानं कृत्वा, पुत्रस्य गिरिजा स्वयम् ।
त्रिरावृत्तोपवीतं च, ग्रन्थिनैकेन संयुतम् ॥ ४२
सुदर्शनाय पुत्राय, ददौ प्रीत्या तदम्बिका ।
उद्दिश्य शिव गायत्रीं, षोडशाक्षरसंयुताम् ॥ ४३ ॥

इन श्लोकों द्वारा पार्वती देवी के अपने पुत्र को स्वयं यज्ञोपवीत देने का वर्णन है।

भविष्य पुराण के वचनः—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः, शूद्रा ये शुचयोऽमलाः ।
तेषां मन्त्राः प्रदेया वै, न तु संकीर्णधर्मिणाम् ॥
या स्त्री भर्त्रा वियुक्तापि, स्वाचारे संयुता शुभा ।
सा च मन्त्रान् प्रगृह्णातु सभर्त्री तदनुज्ञया ॥

भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४।१३।६२-६३

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सदाचारी शूद्र इन सब को मन्त्रों का उपदेश दे देना चाहिये केवल अधार्मिक पापियों को नहीं। जो स्त्री विधवा हो कर भी अपने उत्तम आचार में तत्पर है वह भी मन्त्रों को ग्रहण करे जिसका पति जीवित हो वह उसकी अनुमति से मन्त्रों को ग्रहण करे।

इस प्रकार स्त्रियों के लिये मन्त्रोपदेशादि का अधिकार भविष्य पुराण के इन वचनों से स्पष्ट है।

अग्नि पुराण में स्त्रियों का संन्यासः—

अग्नि पुराण में निम्न श्लोक द्वारा स्त्रियों के संन्यास का स्पष्ट निर्देश है जो उपनयनादि के पश्चात् ही हो सकता है:—

स्त्रीणां प्रव्रजितानां तु, करशुल्कैर्विवर्जयेत् ॥

अर्थात् संन्यासिनी स्त्रियों से किसी प्रकार का कर न लेना चाहिये। महामहोपाध्याय पं० शिवदत्त जी शास्त्री ने इसे वैय्याकरण सिद्धान्तकौमुदी की भूमिका में 'स्त्रियो ऽपि विद्याध्ययनाध्यापनयोरधिकारिण्यो भवन्ति"

अर्थात् स्त्रियों का भी विद्याध्ययन और अध्यापन का अधिकार है इस शीर्षक से अन्य अनेक प्रमाणों के साथ उद्धृत किया है यद्यपि इसका प्रतीक अब तक हमें ज्ञात नहीं हो सका। इस पुस्तक के पृ० १२० पर महामहोपाध्याय मित्र मिश्र कृत 'वीरमित्रोदय' के संस्कार प्रकाश पृ० ४०५ से जो उद्धरण

हमने दिया है उस में ठीक ही लिखा है कि 'अत एव संन्यास–ब्रह्मजिज्ञासादिकमपि उपनीतानामेव स्त्रीणां घटते"

अर्थात् संन्यास और ब्रह्मजिज्ञासा आदि उपनयन संस्कार युक्ता स्त्रियों के विषय में चरितार्थ हो सकते हैं।

इस प्रकार न केवल वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, श्रौतसूत्रों, गृह्यसूत्रों स्मृतियों के वेदानुकूल भागों, रामायण और महाभारत में किन्तु पुराणों में भी अनेक स्थानों पर कन्याओं के उपनयन और वेदाध्ययन करने कराने का विधान पाया जाता है। इनमें सेवेद स्वतः प्रमाण हैं और ब्राह्मण, श्रौत सूत्र, गृह्य सूत्र, स्मृति, मीमांसादि ग्रन्थ परतः प्रमाण। अतः जहां २ इन अन्य ग्रन्थों में वेद विरुद्ध वचन पाये जाएं (जैसे कि मध्य मध्य में अनेक प्रक्षेपों के कारण अब पाये जाते हैं इस में सन्देह नहीं) वहां उनकी प्रामाणिकता नहीं होती जैसे कि "विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यात्'(मीमांसा) इत्यादि के प्रमाण देकर प्रथम अध्यायमें तथा स्मृति विषयक ४र्थ अध्याय में दिखाया जा चुका है। वेदों में कन्याओं के ब्रह्मचर्य का स्पष्ट विधान है अतः वैदिक काल में जब नर-नारियों का आचरण वेदानुकूल था कन्याएं बालकोंके समान ही यज्ञोपवीत धारण करती और वेदाध्ययन करती थीं। वैदिक यज्ञों में स्त्रियां पूर्ण सक्रिय भाग लेती थीं।

अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत।
स नो अर्य्यमा देवः प्रेतो मुञ्चतु मा पतेः॥
(साम मन्त्र ब्राह्मण १-२-२)

इत्यादि से स्पष्ट ज्ञात होता है कि कन्याएं स्वयं भी अग्निहोत्र करती थीं। उस के पश्चात जब वेदों का प्रचार कुछ कम हो गया तो कुछ ग्रन्थों में यह विधान कर दिया गया कि स्त्रियों का पृथक् यज्ञ करने का अधिकार नहीं। "नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् ॥" इत्यादि श्लोको में जो वर्तमान मनुस्मृत्यादि में पाये जाते हैं कुछ ऐसा भाव है किन्तु तो भी पतियों के साथ उनके यज्ञाधिकार को स्वीकार किया गया। उसके पश्चात् बाल्य विवाह प्रचलित करके स्त्रियों से उपनयन और वेदाध्ययन के अधिकार को भी धीरे २ छीन लिया गया और उन्हें शूद्रा तुल्य मान लिया गया। इस का बड़ा भयङ्कर परिणाम हुवा। स्त्रियों के अशिक्षिता रहने से समाज का धार्मिक और बौद्धिक पतन हुआ। स्त्रियां सहधर्मिणी और पतियों की सच्ची मित्र होने के स्थान में जो वैदिक आदर्श "स्त्रयं सा मित्रं वनुते जने चित्" ऋ० १।७।१७।२२।, 'सखायाविह सचावहै' अथर्व ६।४२।१ इत्यादि मन्त्रों द्वारा स्पष्टतया सूचित किया गया था केवल उनकी दासियां समझी जाने लगीं। उनकी अवस्था पैरों की जूतियों की सी हो गई। वेदाध्ययनादि धार्मिक और यज्ञादि सामाजिक अधिकारों से उन्हें वञ्चित करके पर्दे में बन्द कर दिया गया और पुराणों की अनेक वेद विरुद्ध, असङ्गत कथाओं के सुनने और सहस्रों देवी देवताओं की पूजा में वे दिन व्यतीत करने लगीं।

बीच २ में अनेक सुधारकों का जन्म होता रहा जो इन अवैदिक कुप्रथाओं को दूर करने का प्रयत्न करते रहे। मण्डन मिश्र की सुयोग्य धर्मपत्नी उभय भारती वा भारती देवी जैसी विदुषी महिलाओं का भी जन्म इस पवित्र आर्यावर्त में होता रहा जिन के विषय में शङ्कर दिग्विजय में यह वर्णन है कि:-

सर्वाणि शास्त्राणि षडङ्गवेदान्
काव्यादिकान् वेत्ति परं च सर्वम् ॥
तन्नास्ति नो वेत्ति यदत्र बाला
तस्मादभूच्चित्रपदं जनानाम् ॥ शङ्कर दिग्विजय ३ । १६

अर्थात् भारती देवी सर्व शास्त्र तथा अङ्गों सहित सब वेदों और काव्यों को जानती थी। इससे बढ़ कर किसी स्त्री की योग्यता निष्पक्षपातता और न्याय बुद्धि का क्या प्रमाण हो सकता है कि श्री शङ्कराचार्य जैसे अपने समय के धुरन्धर विद्वान् मण्डन मिश्र जैसे प्रसिद्ध मीमांसक पण्डित के साथ शास्त्रार्थ में उस को मध्यस्थ बनानेका प्रस्ताव करें और अपने पति के शास्त्रार्थ में पराजित होने पर वह शङ्कराचार्य जी से यह कह कर शास्त्रार्थ करे कि:—

'अपि तु त्वयाद्य न समग्रजितः,
प्रथिताग्रणी र्मम पति र्यदहम् ।
वपुरर्धमस्य न जिता भगवन्,
कुरु मां विजित्य खलु शिष्यमिमम् । स. ६ । ५६ ।

अथात् अभी आपने मेरे सुप्रसिद्ध पतिदेव को पूरा नहीं जीता क्योंकि मैं उन की अर्धाङ्गी हूँ जिसे आप जीतकर ही इन्हें अपना शिष्य बनाएं ।

इस पर जब श्री शङ्कराचार्य जी ने यह कह कर टालने का यत्न किया कि:—

यदवादि वादकलहोत्सुकतां
प्रतिपद्यते हृदयमित्यबले ।
तदसाम्प्रतं नहि महायशसः
प्रमदाजनेन कथयन्ति कथाम् ।। ६।५६।।

अथात् यशस्वी लोग स्त्रियों से शास्त्रार्थ नहीं किया करते। तो भारती देवी ने सुलभा, गार्गी आदि के साथ जनक महाराज और याज्ञवल्क्य जैसे सुप्रसिद्ध यशस्वियों की चर्चा करते हुए कहा कि:—

स्वमतं प्रभेत्तुमिह यो यतते,
प्रमदाजनोऽस्तु यदि वास्त्वितरः ।
यतितव्य मेव खलु तस्य जये,
निजपक्षरक्षणपरैर्भगवन् ।। ६ ६०
अत एव गार्ग्यभिधया कलहं,
सह याज्ञवल्क्यमुनिराडकरोत् ।

जनकस्तथा सुलभयाऽबलया,
किममी भवन्ति न यशोनिधयः ॥ ८। ६१ ॥

अर्थात् जो भी अपने पक्ष का खण्डन करे उसके साथ अपने पक्ष के समर्थन के लिये शास्त्रार्थ करना चाहिये इसी लिये जनक ने सुलभा और मुनिराज याज्ञवल्क्य ने गार्गी के साथ शास्त्रार्थ किया था क्या वे यशस्वी महानुभाव न थे ?

अन्त में शङ्कराचार्य जी को भारती देवी के साथ शास्त्रार्थ करने को बाधित होना पड़ा। इनका जो शास्त्रार्थ हुआ उसका वर्णन करते हुए शङ्कर दिग्विजय में लिखा है:—

अथ सा कथा प्रववृते स्म तयो-
रुभयोः परस्परजयोत्सुकयोः।
मतिचातुरीरचितशब्दझरी-
श्रुतिविस्मयीकृतविचक्षणयोः ॥ शङ्करदि० ६। ६३

अर्थात् ऐसा अद्भुत शास्त्रार्थ हुआ कि बड़े २ विद्वान् भी उसको देख कर विस्मित हो जाते थे। अन्त में भारती देवी ने श्री शङ्कराचार्य से एक विशेष शास्त्र विषयक ऐसे प्रश्न कर डाले कि उन्हें १ मास का अवकाश उत्तर देने के लिये मांगना पड़ा।

ऐसे अन्य कितने ही उदाहरण स्त्रियों की अद्भुत बुद्धिमत्ता और योग्यता के विद्यमान हैं तो भी पं० दीनानाथ जी को यह लिखते हुए लज्जा नहीं आती कि स्त्रियों की बुद्धि कम होती है, वे मन्त्रादि का ठीक उच्चारण नहीं कर सकतीं, उनके अन्दर स्वभाव से ही असत्य, छल, कपटादि दुर्गुण भरे रहते हैं इत्यादि।

यजुर्वेद के जिस मन्त्र में २२।२२। 'सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्' यह प्रार्थना आई है वहीं स्त्रियोंके लिये विशेष प्रार्थना 'पुरन्धिर्योषा' इस रूप में पाई जाती है जिसका अर्थ स्त्रियां बहुत बुद्धि वाली और कर्म करने वाली पुरु—धी-धीं के बुद्धि और कर्म ये दोनों अर्थ निघण्टु में दिये हैं। वाणी अर्थ में भी उसका प्रयोग कई प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है अतः उसका अर्थ उत्तम वाणी शक्तिवाली भी हो सकता है। इस प्रकार पं० दीनानाथ जी की सब असङ्गत, स्त्री निन्दा-सूचक कल्पनाएं खण्डित हो जाती हैं।

संस्कृत की सुप्रसिद्ध कवयित्रियों में विजयाङ्का, देवी, शीलभट्टारिका, सुभद्रा आदि आदि सैकड़ों हुई हैं जिनके विषय में राजशेखर ने सूक्ति मुक्ता वली में लिखा है कि:—

सरस्वतीव कर्णाटी, विजयाङ्का जयत्यसौ ।
या वैदर्भगिरां वासः, कालिदासादनन्तरम् ॥
नीलोत्पलदलश्यामां, विजयाङ्कामजानता ।
वृथैव दण्डिनाप्युक्तं, सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

शीला विज्जा मारुता मोरिकाद्याः
काव्यं कर्तुं सन्ति विज्ञाः स्त्रियोऽपि ।

विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं
विश्वं वक्तुं यः प्रवीणः स वन्द्यः ॥
सारङ्ग पाणिः

पार्थस्य मनसि स्थानं, लेभे खलु सुभद्रया ।
कवीनां च वचोवृत्ति-चातुर्येण सुभद्रया ॥
(काव्य मीमांसा)

ऐसी अवस्था में स्त्रियों को हीन समझना और उन्हें वेदों के पवित्र ज्ञान से वञ्चित रखना सर्वथा अनुचित है।

स्त्रिया अशास्य मनः ऋ० ८ । ३३ । १७ इस वाक्य का तो अर्थ यह है कि स्त्री के मन पर जबर्दस्ती शासन नहीं किया जा सकता । उसके अन्दर पुरुष की अपेक्षा अधिक दृढ़ता व स्थिरता होती है। उसे प्रेम और शान्ति पूर्वक ही परिवर्तित करना चाहिये "उतो अह रघुं क्रतुम्" का अर्थ भी स्त्री का मन ज्ञानविषयमें शीघ्र गामी होता है यह है न कि तुच्छ। रघु शब्द का राजा रघु के नाम में प्रयोग इसी अर्थ में है। रघुवंश सर्ग ३। १९ में कविकुल शिरोमणि कालिदास ने रघु की व्युत्पत्ति देते हुए कहा है:—

श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भकस्तथा परेषां युधि चेति पार्थिवः ।
अवेक्ष्य धातोर्गमनार्थमर्थवित् चकार नाम्ना रघुमात्मसंभवम्
रघु० ३। १९

रघु शब्द 'रघि गतौ' इस धातु से बनता है यह मन में

विचार करके कि यह बालक वेद शास्त्र के ज्ञान के अन्त तक जाने वाला हो साथ ही युद्ध में शत्रुओं का अन्त तक पीछा करने वाला वा उन्हें परास्त करने वाला हो इस लिये दिलीप ने अपने पुत्र का नाम रघु रक्खा। इसी अर्थ को उपर्युक्त मन्त्र में लेने पर उसका भाव स्पष्ट है कि स्त्रियों का क्रतु अर्थात् ज्ञान विषय के अन्त तक जाने वाला होता है। इससे उनकी बुद्धि की तीव्रता सूचित होती है न कि हीनता। सायण व सातवलेकर जी आदि हमारे लिये प्रामाणिक नहीं। इस प्रकार वेद मन्त्रों का अनर्थ करके पं० दीनानाथ जी ने जो अपनी हीन भावनाओं को वेदानुकूल सिद्ध करने का यत्न किया है वह उनका घोर दुस्साहस है।

महर्षि दयानन्द का वैदिक मन्तव्यः—

इस युग में वेदोद्धारकशिरोमणि स्वनामधन्य महर्षि दयानन्द जी ने स्त्रियों की स्थिति को वैदिक आदर्श के अनुकूल उन्नत बनाने का सबसे अधिक प्रयत्न किया। उन्होंने "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इत्यादि मन्त्रों को उद्धृत करते हुए कन्याओं के लिये ब्रह्मचर्य का विधान किया। उनके विषय में भी पं० दीनानाथ जी ने भ्रम फैलाने का निन्द्य यत्न किया है कि उन्होंने कन्याओं के उपनयन व यज्ञोपवीतादि का कहीं विधान नहीं किया। निम्न लिखित थोड़े से उद्धरण जो महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों से लिये गये हैं पं० दीनानाथ जी के कथन की असत्यता दिखाने को पर्याप्त हैं:—

[१] ऋ० १।१।५ के भाष्य में ऋषि ने लिखा है:—

याः कन्या यावच्चतुर्विंशतिवर्षमायुस्तावद् ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रियतया साङ्गोपाङ्गवेदविद्या अधीयते ता मनुष्य-जातिभूषिका भवन्ति ॥

अर्थात् जो कन्या २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक अङ्ग उपाङ्ग सहित वेद विद्याओं को पढ़ती हैं वे मनुष्यजाति को सुशोभित करने वाली होती हैं।

[२] यजु० १४।१४ के भाष्य में ऋषि ने लिखा है:—

यदि मनुष्या अस्यां सृष्टौ ब्रह्मचर्यादिना कुमारान् कुमारीश्च द्विजान् सम्पादयेयुस्तर्हि ते सद्यो विद्वांसः स्युः ॥

अर्थात् यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि से कुमार और कुमारियों को द्विज बनाएं तो वे शीघ्र विद्वान् हो जाएं।

[३] सत्यार्थ प्रकाश ३ य समुल्लास में ऋषि ने लिखा कि:—

इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे २ वेदार्थ के ज्ञान रूप उत्तम तप को बढ़ाते जाएं। (शताब्दी संस्करण पृ० १३५)

[४] कुमारी ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्णविद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती हो के पूर्ण युवा-वस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वा पूर्णयुवावस्थास्थ पुरुष को प्राप्त हो इस लिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण अवश्य करना चाहिये।"

[सत्यार्थ प्रकाश ३ य समु० शताब्दी संस्करण पृ० १६५]

[५] जब कन्या को ८ से २४, २२, २०, १८ अथवा १६

वर्ष तक आचार्य की शिक्षा प्राप्त हो तभी पुरुष वा स्त्री विद्यावान् हो कर धर्मार्थ काम मोक्ष के व्यवहारों में अति चतुर होते हैं। [संस्कार विधि पृ० १००]

[६] "जब विद्या, हस्तक्रिया, ब्रह्मचर्य व्रत भी पूरा हो तभी गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें।"

[संस्कार विधि समावर्तन प्रकरण पृ० ११६]

(७) ऋग्वेद १।७१।३ के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने लिखा कि:—

"यथा वैश्या धर्मं धृत्वा धनमर्जयन्ति तथैव कन्या विवाहात् प्राक् सुब्रह्मचर्येणाप्ता विदुष्योऽध्यापिकाः प्राप्य पूर्णां सुशिक्षां विद्यां चादायाथ विवाहं कृत्वा प्रजासुखं चार्जयेयुः ॥

अर्थात् जिस प्रकार वैश्य लोग धर्म धारण करके धनोपार्जन करते हैं उसी प्रकार कन्याओं को चाहिये कि विवाह से पहले शुभ ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके विदुषी अध्यापिकाओं को प्राप्त कर के सुशिक्षा और विद्या संचय करके विवाह करें।"

(८) ऋग्वेद १।११६।५ के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने लिखा:—

'यथा ब्रह्मचर्यं कृत्वा प्राप्तयौवनावस्था विदुषी कुमारी स्वप्रियं पतिं प्राप्य सततं सेवते यथा च कृत-ब्रह्मचर्यो युवा स्वाभीष्टां स्त्रियं प्राप्यानन्दति तथैव सभा-सेनापती सदा भवेताम् ॥

अर्थात् जैसे ब्रह्मचर्य करके यौवनावस्था को पाई हुई विदुषी कुमारी कन्या अपने प्यारे पति को पाय निरन्तर उस की सेवा करती है और जैसे ब्रह्मचर्य को किये हुए जवान पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाही हुई स्त्री को पाकर आनन्दित होता है वैसे ही सभा और सेनापति सदा होवें।

(६) ऋग्वेद ५।३२।११ के भाष्य में ऋषि ने लिखाः—

ब्रह्मचारिणी प्रसिद्धकीर्तिं सत्यपुरुषं सुशीलं शुभगुणरूपसमन्वितं प्रीतिमन्तं पतिं ग्रहीतुमिच्छेत् तथैव ब्रह्मचार्यपि स्वसदृशीमेव ब्रह्मचारिणीं स्त्रियं गृह्णीयात् ॥

अर्थात् ब्रह्मचारिणी प्रसिद्ध कीर्ति वाले, उत्तम स्वभाव वाले, शुभ गुण, रूप युक्त, प्रीति वाले पति को ग्रहण करने की इच्छा करे वैसे ही ब्रह्मचारी भी अपने सदृश ब्रह्मचारिणी स्त्री को ग्रहण करे।

इन शब्दों को पढ़ते हुए महर्षि गार्ग्यायण के 'प्रणववाद' में दिये "ब्रह्मचारिणां च ब्रह्मचारिणीभिः सह विवाहः प्रशस्यो भवति।" अर्थात् ब्रह्मचारियों का (वेद और परमेश्वर को जानने वाले विद्वानों का) ब्रह्मचारिणियों (वेद और परमेश्वर विषयक ज्ञान रखने वाली विदुषियों) के साथ विवाह ही प्रशंसनीय होता है और साथ ही महाभारत के आदि पर्व के अ. १३१ का १० म श्लोक यहां हमें विशेष रूप से स्मृति गोचर होता है जहां लिखा है कि:—

अर्थात् जैसे ब्रह्मचर्य करके यौवनावस्था को पाई हुई विदुषी कुमारी कन्या अपने प्यारे पति को पाय निरन्तर उस की सेवा करती है और जैसे ब्रह्मचर्य को किये हुए जवान पुरुष अपनी प्रीति के अनुकूल चाही हुई स्त्री को पाकर आनन्दित होता है वैसे ही सभा और सेनापति सदा होवें।

(६) ऋग्वेद ५।३२।११ के भाष्य में ऋषि ने लिखाः—

ब्रह्मचारिणी प्रसिद्धकीर्तिं सत्यपुरुषं सुशीलं शुभगुणरूपसमन्वितं प्रीतिमन्तं पतिं ग्रहीतुमिच्छेत् तथैव ब्रह्मचार्यपि स्वसदृशीमेव ब्रह्मचारिणीं स्त्रियं गृह्णीयात् ॥

अर्थात् ब्रह्मचारिणी प्रसिद्ध कीर्ति वाले, उत्तम स्वभाव वाले, शुभ गुण, रूप युक्त, प्रीति वाले पति को ग्रहण करने की इच्छा करे वैसे ही ब्रह्मचारी भी अपने सदृश ब्रह्मचारिणी स्त्री को ग्रहण करे।

इन शब्दों को पढ़ते हुए महर्षि गार्ग्यायण के 'प्रणववाद' में दिये "ब्रह्मचारिणां च ब्रह्मचारिणीभिः सह विवाहः प्रशस्यो भवति।" अर्थात् ब्रह्मचारियों का (वेद और परमेश्वर को जानने वाले विद्वानों का) ब्रह्मचारिणियों (वेद और परमेश्वर विषयक ज्ञान रखने वाली विदुषियों) के साथ विवाह ही प्रशंसनीय होता है और साथ ही महाभारत के आदि पर्व के अ. १३१ का १० म श्लोक यहां हमें विशेष रूप से स्मृति गोचर होता है जहां लिखा है कि:—

ऐतिहासिक दृष्टि से इस विषय पर विचार करते हुए पूना के 'यज्ञ और संस्कार' विषयक-व्याख्यान सं० ७ में ऋषि दयानन्द ने कहा था कि:—

"स्त्रियों को भी विद्या सम्पादन का अधिकार पहले होता था और उसके अनुकूल उनका व्रतबन्ध संस्कार (अर्थात उपनयन संस्कार) पूर्व काल में करते थे।

धर्माधर्म विषयक पूना के ३ य व्याख्यान में ऋषि दयानन्द ने कहा था कि:—

कई स्त्री लोग आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती थीं और साधारण स्त्रियों के भी उपनयन और गुरु-गृह में वास इत्यादि संस्कार होते थे।"

ऋषि दयानन्द के इतने स्पष्ट वचन स्त्रियों के उपनयन, ब्रह्मचर्य इत्यादि विषयक होते हुए भी पं० दीनानाथ जी का सर्वथा अप्रामाणिक (क्योंकि उस में पौराणिक पण्डितों ने अनेक प्रक्षेप कर दिये थे और इसी लिये ऋषि को २ य संस्करण संशोधित रूप में निकालने की आवश्यकता हुई) सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण के आधार पर कहना कि स्वामी दयानन्द ने भी कन्याओं का यज्ञोपवीतादि नहीं माना सर्वथा असत्य है और उस से उनका दुराग्रह सूचित होता है। वस्तुतः महर्षि दयानन्द के ऊपर उद्धृत वाक्यों से यह स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द के स्त्रियों की स्थिति विषयक विचार अत्यन्त उत्तम और उदार थे। उन्होंने इस विषयक जितना अधिक प्रयत्न किया उतना अन्य किसी भी आचार्य ने नहीं किया यह बात सर्वथा निश्चित है।

परिशिष्ट

कुछ अन्य स्पष्ट प्रमाण

शतपथ ब्राह्मण के कुछ वचनः—

इस पुस्तक के २ य अध्याय में हम ने शतपथ ब्राह्मण के अनेक वचन स्त्रियों के वेदाधिकार (वैदिक कर्म काण्ड में अधिकार) के विषय में उद्धृत किये हैं। उनके अतिरिक्त अन्य भी अनेक हैं जिनके यजुर्वेद के मन्त्रों के उच्चारण करने का उनके लिये विधान है उदाहरणार्थः—

शतपथ १।३।१।२६ (अच्युत ग्रन्थ माला संस्करण पृ० ३५-३६) में लिखा है अथ पत्नीं सन्नह्यति......अथ सा (पत्नी) आज्यमवेक्षते 'अदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामीति ...अग्नेर्जिह्वासि...सुहूर्देवेभ्यः धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे।' यह यजुर्वेद १।३० का मन्त्र है जिसका उच्चारण पत्नी से करवाया जाता है।

शतपथ २।५।२।२१ में विधान है तां (पत्नीं) वाचयति "प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः।" यजु. ३।४४ (यहां यजु. ३।४४ के पत्नी द्वारा उच्चारण करवाने का स्पष्ट विधान है।

शतपथ २।५।२।२६ [अच्युत प्र. मा. संस्करण पृ० २२२-२२३) में निम्न विधान है:—

अथ एनां (पत्नीं) वाचयति:-अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वाऽस्तं प्रेत सचाभुवः ॥"
(यजु. ३।४७)

यहां यजु. ३।४७ के पत्नी द्वारा उच्चारण करवाने का विधान करते हुए उसकी व्याख्या की गई है।

शतपथ ३।८।२ पृ० ३७८ में निम्न विधान है 'नेष्टा तां (पत्नीं) वाचयति 'नमस्त आतानानर्वा प्रेहि। घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु ॥" यजु. ६।१२ यहां पत्नी द्वारा उपर्युक्त यजु. ६।१२ के मन्त्र का उच्चारण करवाने का विधान कर के उस की व्याख्या की गई है।

शतपथ ३।३।२।१२ में विधान है "तां (पत्नी) नेष्टा वाचयतिः–"तोतो रायः" इति। य० ४।२२ अथैनां सोमक्रयण्या संख्यापयति वृषा वै सोमो योषा पत्नी। स संख्यापयति "समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा। मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव वीरं विदेय तव देवि संदृशि" (यजु. ४।२३) यहां यजु. ४।२२ और ४।२३ मन्त्र पत्नी से उच्चारण करवाने का विधान है।

शतपथ ३।५।३।१७-१८ पृ० ३३५ में निम्न विधान है "अथ (पत्नी यजमानौ) वाचयति 'प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्। स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः।" (यजु० ५ । १७)

यहां यजु० ५। १७ के यजमान और उसकी पत्नी दोनों द्वारा उच्चारण कराने का विधान है।

शतपथ ४। ४। २। १८ पृ० ४६२ में निम्न विधान है:—

उदानयति नेष्टा पत्नीं तामुद्गात्रा संख्यापयति ' प्रजापति-र्वृषाऽसि रेतोधा रेतो मयि धेहि" इति (यजु० ८ । १७) यहां यजु० ८। ३ पत्नी द्वारा बुलवाने का विधान है। ऐसे ही शतपथ ब्राह्मण में अन्य अनेक स्थानों पर पत्नी के यजुर्वेदादि के मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करवाने का स्पष्ट विधान है। पत्नी मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण तथा उनका अर्थ ज्ञान विशेष और निरन्तर अभ्यास के पश्चात् ही कर सकती है अन्यथा नहीं। कात्यायन श्रौत सूत्र में भी शतपथ के अनुसार ही सैकड़ों मन्त्र पत्नी से बुलवाने का विधान है। इस लिये पं० दीनानाथ जी का यह कथन भी खण्डित हो जाता है कि केवल विवाह संस्कार में कुछ थोड़े से मन्त्र पत्नी के उच्चारण करने के हो सकते हैं उनको भी पति या ऋत्विक् बोल लेगा। ये तथा अन्य बहुत से मन्त्र विवाह संस्कार के नहीं, अन्य यज्ञों के हैं साथ ही ये शुक्ल यजुर्वेद के हैं जिनसे शास्त्री जी की सूत्र ग्रन्थोक्त मन्त्रों के अन्य शाखाओं के होने की बात भी कट जाती है यद्यपि शास्त्री जी उन शाखाओं को तो साक्षात् वेद ही मानते हैं। अतः उन्हें वैसा करने का कोई अधिकार नहीं। 'वाचयति' का प्रयोग

'वाचयति' का प्रयोग:—

यहां ब्राह्मण ग्रन्थों और कात्यायन श्रौतसूत्र, काठक गृह्यसूत्रादि में पति पत्नी दोनों के लिये प्रायः सर्वत्र 'वाचयति' का प्रयोग

समान है। उदाहरणार्थ शतः ३। ३। ४। २४ में विधान है कि "तस्मिन् यजमानं वाचयति 'वरुणस्य चक्षसे' शतपथ ३।४।३० में विधान है 'अथैनं यजमानं' शालां प्रपादयति स प्रपादयन् वाचयति 'या ते धामानि हविषा यजन्ति' शतः ३। ५। ३। २३ में विधान है:--अथ मध्यमं छदिरुपस्पृश्य यजमानं वाचयति 'प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण' शतः ३। ३, २४ में विधान है— अथ रराट्यामुपस्पृश्य यजमानं वाचयति 'विष्णो रराटमसीति"

ऐसे ही सैकड़ों अन्य स्थानों पर यजमान के लिये भी अध्वर्यु द्वारा मन्त्र बुलवाने का विधान है जिसका तात्पर्य इतना ही है कि अध्वर्यु यजमान को वा यजमान पत्नी को अमुक २ मन्त्र मन्त्र बोलने का निर्देश देता है। यह विधि की नियमानुसार पूर्ति के लिये है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वे अशिक्षित हैं।

कात्यायन श्रौतसूत्र में सर्वत्र यजमान से मन्त्र बुलाने में इसी 'वाचयति' का प्रयोग है यथा 'आ वो देवास इति अध्वर्युर्यजमानं वाचयति' [काण्व संहिता सायण भा० पृ० ३१] प्राची प्रेतमिति यजमानं वाचयति [का० संहिता भाष्य पृ० ६३] उरुं हीति वाचयति यजमानम् अध्वर्युर्यजमानं वाचयेत् उरुं हि राजा वरुणश्चकार [का० सं० भाष्य पृ० १२६]

ऐसे ही काठक गृह्यसूत्र में प्रायः सर्वत्र वर से 'वाचयति' का प्रयोग है यथा 'पाणिग्रहण' के अवसर पर लिखा है:—

गृभ्णामीति चतस्रो वाचयति [वरम्] गृभ्णामिते सुप्रजास्त्वाय हस्तौ, तां पूषन् शिवतमाम् इत्यादि [काठक गृ० सू०

२५।२२। अग्निर्मा जनिमानिति वाचयति वरम् [का० गृ० २५।३१] ततो गाथा वाचयति "सरस्वति प्रेदमवेत्यनुवाकम् उभावित्येके [का० गृ० २५।२३] यहां 'सरस्वति प्रेदमव' इस अनुवाक को जिस में २५ मन्त्र हैं वर द्वारा और अनेक आचार्यों के मत में वर वधू दोनों द्वारा उच्चारण कराने का विधान है जो महत्त्व पूर्ण है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'वाचयति' के प्रयोग को देख कर पं० दीनानाथ जी का यह परिणाम निकालना कि पत्नीं अशिक्षिता" होती है अतः उस के मन्त्र पति वा ऋत्विक् बोल लेता है अथवा यजमान के सहारे वह एकाध मन्त्र का जिस किसी तरह उच्चारण कर लेगी सर्वथा अशुद्ध है। "वेदे पत्नी वाचयति', इत्यादि प्रयोगों से भी स्पष्ट है कि वेद उस के हाथ में देकर उससे मन्त्र उच्चारण कराये जाते हैं।

शाङ्खायन ब्राह्मण का वचनः—

ऋग्वेदीय शाङ्खायन ब्राह्मण के २य अध्याय में भी अग्निहोत्र के काल पर विचार करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण के समान जिसको पृ० ३५-३६ पर उद्धृत किया जा चुका है कुमारी गन्धर्व गृहीता का नाम आदर पूर्वक स्मरण किया गया है 'यत्र वैतदुभयेद्यु रग्निहोत्रमहूयतान्येद्यु र्वा तदेतर्हि हूयते रात्र्यामेवेत्येतदेव कुमारी गन्धर्वगृहीतोवाच रात्र्यामेनोभे आहुती जुहृतीति रात्र्यां हीति सोवाच ॥ (शाङ्खायन ब्राह्मण पृ० ६ आनन्दाश्रम पूना सं०)।

इस उद्धरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में कुमारियां न केवल यज्ञ करती थीं प्रत्युत उनमें से अनेक कन्याओं की सम्मति को यज्ञ विषय में प्रामाणिक समझा जाता था। 'अथ यद् वेदे पत्नीं वाचयति वृषा वै वेदो योषा पत्नी" इत्यादि विधान भी इस शाङ्खायन ब्राह्मण के तृतीय अध्याय में पृ० ११ पर पाया जाता है जिसमें पत्नीको वेद में से मन्त्र बुलवाने का विधान है।

यमस्मृति का एक अन्य वचनः—

यमस्मृति के वचनों का हम पृ० १३८-१३।६ पर उल्लेख कर चुके हैं। उस स्मृति के निम्न वचनों को (जो दुर्भाग्यवश वर्तमान संस्करणों में नहीं पाया जाता) ऋग्वेद के अस्यवामीय सूक्त (१।१६४) के भाष्यकार स्वामी आत्मानन्द ने निम्न रूप में उद्धृत किया है:—

"यथाधिकारः श्रौतेषु, योषितां कर्मसु श्रुतः।
एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्मणि ब्रह्मवादिताम् ॥

इति यमस्मृतिः। तस्मात् स्त्रीणामप्यस्ति ब्रह्मविद्यायामधिकारः।" (स्वा० आत्मानन्द कृत अस्यवामीय सूक्त भाष्य पृ० १६ प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास लाहौर)

अर्थात् जैसे स्त्रियों का वैदिक कर्मों में अधिकार शास्त्रों में सुना गया वा प्रसिद्ध है वैसे ही ब्रह्मविद्या के प्राप्त करने कराने का भी उसका अधिकार है। यह वचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है यद्यपि अनुदार स्वार्थी लोगों ने इसे पीछे से यमस्मृति से निकाल दिया। इस से पूर्व कल्पवाली बात भी खण्डित हो जाती है।

"विष्णु रहस्य" का वचनः—

इसी स्वा० आत्मानन्द कृत अस्यवामीय सूक्त भाष्य में 'विष्णु रहस्य' का निम्न वचन उद्धृत किया है:—

कात्यायनी च मैत्रेयी, गार्गी वाचक्नवी तथा।
एवमाद्या विदुर्ब्रह्म, तस्मात् स्त्री ब्रह्मविद् भवेत्॥
(अस्यवामीय भाष्यम् पृ० २३)

अर्थात् कात्यायनी, मैत्रेयी, वाचक्नवी गार्गी आदि जैसे ब्रह्म (वेद और परमेश्वर) को जानने वाली थीं ऐसे ही स्त्रियों को ब्रह्म ज्ञान युक्त होना चाहिये।

———

उपसंहार

इस पुस्तक के ५ अध्यायों में प्रबल प्रमाणों और युक्तियों सहित यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है किः—

(१) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद चारों वेदों में स्त्रियों के वेदाध्ययन, अध्यापन और वैदिक कर्म काण्ड में सक्रिय भाग लेने के अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं। सरस्वती के नामसे वेदों के अनेक सूक्तों में जिन में उस के वेद पढ़ने पढ़ाने तथा यज्ञ करने कराने का स्पष्ट वर्णन है विदुषी स्त्री के ही कर्तव्यों का स्पष्ट प्रतिपादन है। कन्याओं के ब्रह्मचर्य का वेदों में स्थान २ पर विधान है और उसका मुख्य तात्पर्य आत्म संयम पूर्वक वेदों के अध्ययन से है।

(२) वेदों से तात्पर्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्व वेद इन नामों से प्रसिद्ध मन्त्र संहिताओं से है। काण्व संहिता मैत्रायणी संहिता, तैत्तिरीय संहिता इत्यादि शाखाएं और ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य, गोपथ इत्यादि ब्राह्मण मूल वेद नहीं किन्तु उनके व्याख्यान ग्रन्थ हैं जैसे कि सायणाचार्यादि ने भी

'तत्र शतपथब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वाद् व्याख्येय-मन्त्रप्रतिपादकः संहिताग्रन्थः पूर्वभावित्वात्प्रथमो भवति।

(काण्वसंहिता सायण भाष्य काशी पृ० ८)

"कण्वस्तु एतस्य मन्त्रस्य-इषेत्वेत्यादिकस्य विनियोगं मन्त्र-भागानां व्याख्यानं च विविचत्वेत्थं पठति सविता वै देवानां प्रसवितेत्यादि' प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा इति। नात्र तिरोहितमिवास्तीतिचतुर्थभागव्याख्यानम् ।

(काण्व संहिता सायण भाष्यम् पृ० १८-१६)

वसोः पवित्रमसि शतधारम् (य. १।२) काण्वेन तु मन्त्र एवं व्याख्यातः तस्या एव पवित्रं करोतीत्यादि।

(पृ० १६)

अग्ने त्वं सुजागृहि अस्याग्नेः प्रार्थनायास्तात्पर्यं तित्तिरिर्दर्शयति अग्निमेवाधिप कृत्वा स्वपिति —।

(काण्व संहिता भाष्यम् पृ० ७३)

इत्यादि सैकड़ों मन्त्रों की व्याख्या में शतपथ, तैत्तिरीय आदि के वाक्यों को उद्धृत करते हुए कहा है और यह विषय इन ग्रन्थों से सर्वथा पुष्ट होता है पर विषयान्तर होने और प्रकृत विषय के साथ उसका विशेष सम्बन्ध न होने के कारण हमने इस ग्रन्थ में उस पर विचार करना अनावश्यक समझा है यद्यपि इस विषयक प्रचुर सामग्री हमारे पास विद्यमान है।

इन ब्राह्मण ग्रन्थों और शाखाओं में भी स्त्रियों के वेदा-ध्ययनादि विषयक अनेक स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। इनके

अतिरिक्त कात्यायन श्रौत सूत्र, लाट्यायन श्रौत सूत्र, शाङ्खायन श्रौत सूत्र, आश्वलायन श्रौत सूत्रादि तथा व्योम संहिता नामक प्राचीन ग्रन्थ में और पूर्व मीमांसा शास्त्र में इस विषयक बहुत से प्रमाण हैं जिनका निर्देश २ य अध्याय में किया गया है।

(३) पारस्कर गृह्यसूत्र, गोभिल गृह्यसूत्र, आश्वलायन गृह्यसूत्र, काठक गृह्यसूत्र, लोगाक्षि गृह्यसूत्र, शाङ्खायन गृह्यसूत्र, मानव गृह्यसूत्र, जैमिनीय गृह्यसूत्र, इत्यादि के स्त्रियों के वेदमन्त्रोच्चारण करने, यज्ञोपवीत धारण करने तथा वैदिक यज्ञों में सक्रिय भाग लेने विषयक प्रमाणों को तृतीय अध्याय में दिखाया गया है। पं० दीनानाथ जी 'प्रतिनिधिवाद' का आश्रय लेकर इन स्पष्ट प्रमाणों को उड़ाने का प्रयत्न करते हैं कि इन मन्त्रों को स्त्री का पति व पुरोहित पढ़ लेगा। किन्तु ऐसा करना नितान्त उपहास जनक हो जाएगा और उससे शास्त्रीय मर्यादा का भी लोप होगा। "उताहमस्मि संजया-पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥" मैं सब पर विजय प्राप्त करने वाली होऊं, मेरे पति को मेरे कारण उत्तम कीर्ति की प्राप्ति हो। 'अरिष्टाहं सह पत्या भूयासम्' मैं पति देव के साथ सदा नीरोग रहूँ इत्यादि का उच्चारण पति वा पुरोहित द्वारा करवाना विद्वन्मण्डली में उपहास का कारण बन जाता है मूर्खमण्डली की बात पृथक् है। यदि पति व पुरोहित द्वारा ही सब कुछ उच्चारण करना हो तो स्त्रियों द्वारा उच्चारण करने योग्य मन्त्रों तथा अन्य

क्रियाओं का क्यों विधान है ? अतः इस प्रकार की टालमटोल से काम नहीं चल सकता । स्त्रियों द्वारा उच्चारण योग्य मन्त्र विवाहसंस्कार में ही नहीं जिन्हें शास्त्री जी को भी बाधित होकर मानना पड़ा है अन्य संस्कारों और यज्ञों में भी अनेक हैं, उनको सम्बोधित करके कहे गये मन्त्र तो सहस्रों हैं। वे वेद ज्ञान के बिना उन्हें कैसे समझ सकेंगी ? क्या प्रत्येक मन्त्र की व्याख्या उनके लिये करनी पड़ेगी ? इस विषयक वर्तमान अवस्था क्या अत्यन्त शोचनीय नहीं और क्या वेद ज्ञान प्रसार द्वारा उसे दूर करने का प्रयत्न न करना चाहिये ?

(४) स्मृतियों के विषय में जिनमें अनेक वेद विरुद्ध वचन समय २ पर प्रक्षिप्त होते रहे हैं और जो ब्राह्मण ग्रन्थादि की अपेक्षा भी बहुत अर्वाचीन हैं पृथक् विवेचन चतुर्थ अध्याय में करते हुए बताया गया है कि उनमें भी स्त्रियों के वेदाधिकार तथा यज्ञोपवीत धारणादि विषयक कई निर्देश मिलते हैं। उनके वेद विरुद्ध अंश त्याज्य हैं।

(५) पञ्चम अध्याय में ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हुये बताया गया है कि वैदिक काल में गोधा, घोषा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषत्, आदि सैकड़ों ऋषिकाएं और ब्रह्मवादिनियां थीं। रामायण, ब्राह्मण ग्रन्थों के संकलन काल तथा महाभारत काल में भी स्त्रियों के वेदाध्ययन, अध्यापन तथा यज्ञों के करने कराने के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं यद्यपि

क्रमशः इस विषयक शिथिलता आती जा रही थी। पुराणों की इस विषयक शिक्षा यद्यपि अनेक स्थानों पर वेदों के अनुकूल नहीं तथापि उनमें भी सर्ववेदविशारदा वेदवती, वयुना, धारिणी आदि अनेक ब्रह्मवादिनियों के उदाहरण पाये जाते हैं। वर्तमान काल में वैदिक धर्मोद्धारक शिरोमणि महर्षि दयानन्द जी ने स्त्रियों के वेदाध्ययन, वेदाध्यापन, यज्ञ करने कराने विषयक वैदिक आदर्शों का फिर से निर्भयता पूर्वक प्रचार किया जिसका महामहोपाध्याय पं० शिवदत्तजी शर्मा, श्री काशी वेंकटाचल शास्त्री, श्री प० नृसिंह देव जी शास्त्री, पं० गङ्गाप्रसाद जी शास्त्री आदि "सनातन धर्माभिमानी" विद्वानों पर भी विशेष प्रभाव पड़ा और इस विषय में उन्होंने अच्छे उदार विचार प्रकाशित किये जैसे कि उनके ग्रन्थों से अनेक महत्व पूर्ण उद्धरण देकर हम ने दिखाया है। कट्टर पौराणिकों पर भी जो स्त्रियों के लिये पढ़ने मात्र के विरोधी हुआ करते थे महर्षि दयानन्द का इतना प्रभाव पड़ा कि अब वे भी वेद छोड़ कर अन्य सब शास्त्रों को पढ़ने का उन का अधिकार मानने लगे हैं जैसे कि 'सनातन धर्म दिग्दर्शन' के लेखक म० बलराम साधु दादू पन्थी ने पृ० १८६ में लिखा है कि:—

"स्त्रियों के लिये केवल चार वेदों का निषेध है अन्य शास्त्रों के पढ़ने का स्त्रियों को अधिकार शास्त्रों ने दिया है।" (सनातनधर्म दिग्दर्शन प्रथम खण्ड पृ० १८६)

'दयानन्द तिमिर भास्कर' के लेखक कट्टर पौराणिक पन्थी श्री-ज्वालाप्रसाद जी मिश्र को भी यह लिखने को बाधित होना पड़ा कि पति के सन्निधि में विवाह संस्कार के अर्थ तथा कहीं यज्ञ में मन्त्र बोलने की विधि है सो ऋत्विक् कहला देते हैं कुछ पढ़ने की विधि नहीं।"

(दयानन्द तिमिर भास्कर पञ्चमावृत्ति पृ० ४२)

पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी भूतपूर्व आचार्य ऋषिकुल हरद्वार ने तो यह भी लिखा कि:—

युगान्तरे ब्रह्मवादिन्यः स्त्रियः सन्ति । तद्विषय-मिदम् उपाध्याया आचार्या इत्यादि । पुरायुगेषु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्री वाचन तथा" इति स्मरणात् आचार्यादणत्वं च' इत्यपि वार्तिकम् । उपनीय तु यः शिष्यं, वेद मध्यापयेद् द्विजः । सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते।" एकदेशमुपाध्यायः । इति स्मृतिः ।

(वैय्याकरण सिद्धान्त कौमुदी बाल मनोरमा सहिता पृ० ५६६)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सीनेट् द्वारा नियुक्त उपसमिति ने स्व० महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय की अध्यक्षता में स्त्रियों के वेदाधिकार को स्वीकार कर के आर

श्री कल्याणी देवी को संस्कृत महाविद्यालय की वेद मध्यमा श्रेणी में प्रविष्ट करके जिस उदारता का परिचय दिया वह प्रशंसनीय है किन्तु उसके निश्चय की सं० २ से यह ध्वनि निकलती है कि पौरोहित्य और कर्म काण्ड में उप सभा ने अब भी कन्याओं के लिये द्वार कुछ बन्द सा रक्खा है यद्यपि उन्होंने यह कहा है कि श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास और सदाचार के आधार पर हिन्दू धर्म के सिद्धान्तानुसार पौरोहित्य और कर्मकाण्ड की शिक्षा दी जाएगी। हमने इस ग्रन्थ में पुष्ट प्रमाणों से यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि वेदादि सत्य शास्त्रों के अनुसार स्त्रियों का भी पौरोहित्य तथा वैदिक कर्मकाण्ड में पूर्ण अधिकार है अतः हमें निश्चय है कि हिन्दू विश्वविद्यालय के मान्य अधिकारी जिन में सौभाग्यवश डा० अलतेकर जी जैसे योग्य और उदार महानुभाव विद्यमान हैं इस विषयक अधिक उदारता का परिचय देकर स्त्रियों के लिये धार्मिक सब प्रकार के प्रतिबन्ध को हटा देंगे। स्वतन्त्र भारत में वैदिक संस्कृति तथा प्राचीन आर्य आदर्शों की रक्षा का विशेष महत्त्व है यह कार्य स्त्रियों के वेदादि शास्त्रों की उचित शिक्षा देने से ही उत्तमतया सम्पन्न हो सकता है अतः इस का विशेष प्रबन्ध अत्यावश्यक है।

श्री श्रद्धानन्द बलिदान दिवस — धर्मदेव विद्यावाचस्पति

२३-१२-४७

यह पुस्तक सार्वदेशिक सभान्तर्गत 'चन्द्र भानु वेद मित्र स्मारक स्थिरनिधि' के धन से प्रकाशित कराई गई है।